गृहवास्तुप्रदीपः

हिन्दीटीका सहित

* डॉ० (श्रीमती) शैलजा पाण्डेय

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
३८५

गृहवास्तुप्रदीपः

हिन्दीटीका सहित

व्याख्याकर्त्री
डॉ. (श्रीमती) शैलजा पाण्डेय
गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

।। समर्पण ।।

।। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

शिवस्वरूप पिता पं. श्रीकृष्ण कुमारजी तिवारी एवं पार्वतीरूपा माता स्वर्गीया श्रीमती राजकिशोरी देवी जी को सादर समर्पित ।

—शैलजा

प्ररोचना

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानाञ्च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥
भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

सुख-प्रदायक गृह मनुष्य-जीवन की आवश्यकता है। पारिवारिक जीवन के सुखोपभोग का हेतु; धर्म, अर्थ एवं काम का प्रदाता; शीतातप एवं वृष्टि से तथा शत्रुओं से रक्षा करने वाला; मांगलिक एवं धार्मिक कृत्यों का स्थान तथा सुख का आगार— सभी प्राणियों का विश्राम-स्थल अपना आवास ही होता है। गृहस्थ के सभी कार्य गृह में ही सम्पन्न होते हैं, अतः विश्वकर्मा प्रभृति देवों ने गृहस्थ को प्रथमतः गृहनिर्माण का आदेश दिया है—

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम् ।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः ॥

गृह-निर्माण की आवश्यकता को देखते हुए विश्वकर्मा आदि वास्तुविद् देवों एवं आचार्यों ने वास्तुशास्त्र का प्रणयन किया, जिसके आलोक में गृहनिर्माण के विज्ञान का विकास हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ 'गृहवास्तुप्रदीप' आवासीय भवन के निर्माण के लिए विचारणीय सभी प्रसङ्गों पर विचार प्रस्तुत करता है। यह एक सङ्कलन ग्रन्थ है। भवन-प्रकल्पन के विभिन्न अङ्ग-उपाङ्गों की व्याख्या के लिए बृहत्संहिता, वशिष्ठसंहिता, नारदसंहिता, मुहूर्तचिन्तामणि तथा मुहूर्तगणपति आदि ज्योतिष ग्रन्थों के वास्तु-प्रकरणों के अतिरिक्त वास्तुशास्त्र के वास्तुप्रदीप, वास्तुरत्नाकर, वास्तुप्रबोध, वास्तुरत्नावली, बृहद्वास्तुमाला, गृहरत्नभूषण आदि ग्रन्थों से श्लोक लिए गये हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में इस ग्रन्थ के कर्ता का नाम कहीं भी नहीं प्राप्त होता है। अज्ञातकर्तृक इस ग्रन्थ का प्रकाशन १९०१ ई. में सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, बम्बई ने कराया था एवं यह ग्रन्थ उन्हें अयोध्या निवासी पण्डित लक्ष्मीकान्त से प्राप्त हुआ था। यह तथ्य ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर उल्लिखित है।

यह ग्रन्थ १०१ श्लोकों में निबद्ध एवं भोजपुरी अर्थ से युक्त है। पाठ की दृष्टि से प्राप्त ग्रन्थ शुद्ध नहीं है। श्लोक कहीं-कहीं आधे-अधूरे हैं। कुछ स्थलों पर दो श्लोकों को मिलाकर एक श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बहुत सम्भव है, यह प्रतिलिपिकर्त्ता के प्रमाद से उत्पन्न दोष हो। अन्य किसी दूसरी मातृका के अभाव में

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्राप्त पाठ के निर्धारण हेतु उपर्युक्त ज्योतिष एवं वास्तु-शास्त्र के ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है। यह ग्रन्थ जन-सामान्य के लिए उपादेय बन सके, इसके लिये राष्ट्रभाषा हिन्दी में श्लोकों का अर्थ प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार ग्रन्थ के वर्तमान स्वरूप को यथासम्भव परिष्कृत, परिमार्जित एवं सहज बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है। परिष्कार करते समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थ का मूल-स्वरूप बिगड़ने न पाये। इसके लिए श्लोकों के प्राप्त पाठ एवं प्रस्तावित पाठ दोनों को ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, जिससे पाठकों को पूर्व-प्रकाशित एवं प्रस्तावित दोनों पाठों का स्पष्ट रूप से ज्ञान हो सके तथा ग्रन्थ का मूल स्वरूप भी सुरक्षित रहे। श्लोकों के साथ उनके सन्दर्भ-ग्रन्थों को भी देने का प्रयास किया गया है।

श्लोकों के हिन्दी अनुवाद के साथ प्रसङ्ग के और अधिक स्पष्टीकरण हेतु अन्य ग्रन्थों के श्लोकों को एवं अन्य आचार्यों के मतों को भी प्रस्तुत किया गया है।

विषयवस्तु

इस ग्रन्थ में भवन-निर्माण से पूर्व भूमि-चयन से लेकर गृह-प्रवेश तक विधिवत् विचार किया गया है। भूमि-चयन से पूर्व जिस ग्राम-नगरादि में भूमि लेना हो उसके साथ गृहकर्ता की ज्योतिषगत अनुकूलता आवश्यक मानी गयी है। इसके लिए वर्ग-मैत्री, काकिणी, वर्ग एवं राशि के अनुसार ग्राम या नगर की दिशा एवं दशाविचार, वर्णानुसार भूमि का चयन, चयनित भूमि के निकट वृक्ष एवं कूपादि का विचार किया जाता है।

वर्ण के अनुसार श्वेत वर्ण की भूमि ब्राह्मणों के, रक्तवर्ण की भूमि क्षत्रियों के, पीत वर्ण की भूमि वैश्यों के एवं कृष्ण वर्ण की भूमि शूद्रों के अनुकूल कही गई है। इसी प्रकार कुशयुक्त भूमि ब्राह्मणों के लिए, शरयुक्त भूमि क्षत्रियों के लिए, दूर्वायुक्त भूमि वैश्यों एवं काशयुक्त भूमि शूद्रों के लिए प्रशस्त होती है।

आवास की दृष्टि से भूमि का प्राशस्त्य केवल उसकी मृत्तिका के वर्ण एवं भूमि पर उगे कुशादि से ही नहीं; अपितु उस पर उगे वृक्षों से भी किया जाता है। भूमि के उत्तर भाग में प्लक्ष, पूर्व में वट, दक्षिण में गूलर एवं पश्चिम में अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष भूमि को गृह-निर्माण के लिए प्रशस्त बनाता है।

भवन-निर्माणहेतु एवं गृह-निर्माण के पश्चात् गृह-वासियों को जल की आवश्यकता पड़ती है। गृहोपयोगी जल के लिए साधन प्राचीन काल में कूप हुआ करता था। कूप की स्थिति गृह के पूर्व, पूर्वोत्तर, उत्तर एवं पश्चिम में शुभ होती है, शेष दिशाएँ त्याज्य होती हैं।

अपने अनुकूल नगर-ग्रामादि में अनुकूल भूमि-चयन के पश्चात् भूमि-शोधन, गृहारम्भ के लिए अनुकूल मास, नक्षत्र, पक्ष, तिथि एवं वार आदि का विचार तथा गृह-प्रमाण विचारणीय है।

भूमि-शोधन से पूर्व भूमि-परीक्षण होता है। इस ग्रन्थ में भूमि की दो विधियों से परीक्षा वर्णित है—मृत्तिका-परीक्षा एवं जल-परीक्षा।

मृत्तिका-परीक्षा—भूमि-परीक्षण हेतु भूमि के मध्य एक गर्त खोदना चाहिये, जिसका प्रमाण १ हाथ हो। खुदाई से प्राप्त मिट्टी द्वारा पुन: उस गर्त को भर देना चाहिए। यदि मिट्टी गर्त भरने से अधिक हो तो भवन-निर्माण हेतु भूमि उत्तम होती है। यदि सम्पूर्ण मिट्टी गर्त भरने में लग जाय तो भूमि सामान्य एवं गर्त से निकली मिट्टी गर्त भरने में कम पड़े तो भूमि भवन-निर्माण के लिए अनुपयुक्त होती है।

इस परीक्षण-विधि से भूमि के ठोस होने की परीक्षा होती है। ठोस धरती पर निर्मित भवन दीर्घकाल तक स्थित रहता है। इसके विपरीत भूमि में भवन के धँसने की सम्भावना होती है।

मृत्तिका के अतिरिक्त जल के माध्यम से भी भूमि की परीक्षा की जाती है। इस परीक्षा से भी भूमि की दृढ़ता एवं प्राशस्त्य प्रमाणित होता है।

जल-परीक्षा—मृत्तिका परीक्षा के सदृश ही इसके लिए भी भूमि में एक हाथ का गर्त खोदा जाता है। इस गर्त में मिट्टी के स्थान पर जल भरा जाता है। कुछ समय पश्चात् यदि गड्ढे में जल रहे तो भूमि उत्तम होती है। इस पर भवन-निर्माण कराया जा सकता है। यदि जल बिल्कुल सूख जाय तो इसका अर्थ है कि भूमि दृढ़ नहीं है एवं भवन-निर्माण के अनुकूल नहीं है।

जल-परीक्षा के साथ ही शकुन-परीक्षा का भी इस ग्रन्थ में उल्लेख प्राप्त होता है। गर्त में भरा जल स्थिर रहे तो भूमि प्रशस्त होती है। जल की धारा दाहिनी ओर घूमे तो भी भूमि प्रशस्त होती है; किन्तु यदि जलधारा बायीं ओर प्रवाहित हो अथवा शीघ्रता से सूखे तो भूमि गृह-निर्माण हेतु प्रशस्त नहीं होती है।

भूमिशोधन—शुभाशुभ प्रकरण में ग्रन्थकार ने गर्त खोदने से प्राप्त भूमिगत सामग्रियों एवं जीव-जन्तुओं पर भी विचार किया है। भूमि की खुदाई करने पर जला कोयला, बाल, हड्डी, भूसी, चमड़ा एवं राख आदि प्राप्त होना प्रशस्त नहीं माना जाता है। इन वस्तुओं को ध्यानपूर्वक भूमि के भीतर से निकलवा कर ही भवन का निर्माण कराना चाहिए।

गृहारम्भ का शुभकाल—गृहारम्भ के लिए शुभ मास, नक्षत्र एवं तिथि आदि विचारणीय होते हैं। सामान्यतया वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष (अगहन) एवं फाल्गुन गृह-निर्माण के लिए निरापद मास हैं; किन्तु चैत्र में यदि मेष का, ज्येष्ठ में वृष का, आषाढ़ में कर्क का, भाद्रपद में सिंह का, आश्विन में तुला का, कार्तिक में वृश्चिक का एवं पौष में मकर का सूर्य हो तो ये मास गृह-निर्माण के लिए अनुकूल होते हैं।

गृह-निर्माण के लिए १३ नक्षत्र प्रशस्त होते हैं—तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, पुष्य एवं हस्त। सूर्य से

५, ७, ९, १२, १९ एवं २६वें नक्षत्र में भूमि शयन करती है। अत: इनमें गृहारम्भ नहीं करना चाहिए। नक्षत्र-विचार में वृषभ चक्र भी विचारणीय होता है।

गृहारम्भ के समय वास्तु-पूजन का विधान है। वास्तु-पूजन की अनुकूल दिशा का विचार करते हुए ग्रन्थकार का मत है कि यदि सूर्य सिंह, कन्या एवं तुला पर हो तो नैर्ऋत्य कोण में, सूर्य वृश्चिक, धनु एवं मकर पर हो तो वायव्य कोण में, यदि सूर्य कुम्भ, मीन एवं मेष पर हो तो ईशान कोण में तथा सूर्य यदि वृष, मिथुन एवं कर्क पर हो तो आग्नेय कोण में वास्तु-पूजन करना चाहिए। गृहारम्भ के समय यात्राकालीन शकुन घट (जलपूर्ण), ब्राह्मण, बालक के साथ स्त्री आदि शुभ माने जाते हैं।

गृह के प्रमाण का विचार करते समय प्रथमत: राजा, सेनापति, सचिव, राजकीय प्रशासक-अधिकारी, राजमहिषी, युवराज, राजज्योतिषी, राजपुरोहित एवं राजवैद्य आदि राज्य के प्रमुख निवासियों के पाँच प्रकार के गृहों का विचार किया गया है। इन सभी के गृहों का माप वराहमिहिर की बृहत्संहिता के अनुरूप है। वराहमिहिर के ही अनुरूप जन-सामान्य के भवनों पर भी विचार किया गया है। उनके गृहों का माप एवं गृह-मुख की दिशा वर्ण के अनुसार वर्णित है।

गृह का मुखद्वार पूरे वास्तु को प्रभावित करता है, अत: ग्रन्थकर्ता ने मुखद्वार पर विस्तार से विचार किया है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण तथा चारो कोणों के द्वार का फल, द्वार-वेध, द्वार-दोष, तिथि तथा नक्षत्र के अनुसार एवं ध्वजादि आय एवं वर्ण के अनुसार द्वार की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशि वालों के गृह-द्वार पूर्व दिशा में; मेष, धनु एवं सिंह राशि वालों के गृह का द्वार उत्तर दिशा में; वृष, कन्या एवं मकर राशि वालों का गृह-द्वार दक्षिण में तथा मिथुन, कुम्भ एवं तुला राशि का द्वार पश्चिम दिशा में होना चाहिए—ऐसा ग्रन्थकार का मत है। ईशान कोण के द्वार को पूर्व, आग्नेय कोण के द्वार को दक्षिण, नैर्ऋत्य कोण को पश्चिम एवं वायव्य कोण के द्वार को उत्तर दिशा में रखना चाहिए। प्रत्येक दिशा में वाम भाग से चौथे वास्तुपद पर द्वार-विन्यास प्रशस्त होता है।

द्वार के सम्मुख रथ्या, वृक्ष, गृह-कोण, कूप, स्तम्भ एवं जल-नाली आदि द्वार-वेध के कारण बनते हैं। इनके दुष्परिणामों का उल्लेख ग्रन्थ में किया गया है, किन्तु यदि द्वार-वेध के निमित्त द्वार की ऊँचाई की दुगुनी भूमि छोड़ कर हो तो उनसे द्वार-वेध से उत्पन्न दोष गृहस्वामी को नहीं होता है।

गृह के लग्न आदि के द्वारा गृह की आयु, गृह का परहस्त-गमन आदि वास्तु-शास्त्रसम्बन्धी ज्योतिष पर विचार करते हुए गृह के ढलान, ध्रुवादि १६ प्रकार के गृह, देहली-स्थापन, गृह के समीप परिवेश आदि भी इस ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय हैं। बुध, शुक्र, बृहस्पति सूर्य एवं शनि क्रमश: ७, ४, १, ६ एवं ३ भाव में हों तो वह गृह १०० वर्ष तक स्थित रहता है। यदि बृहस्पति, मंगल, सूर्य एवं शुक्र ५, ६, ३ एवं १ भाव में हो तो गृह की स्थिति २०० वर्षों तक; शुक्र, बुध एवं सूर्य १, १० एवं

११ भाव में हों तथा केन्द्र में लग्न को छोड़ कर अन्यत्र बृहस्पति हों तो वह भवन १०० वर्ष तक स्थित रहता है। चन्द्रमा के १०, मंगल एवं शनि के ११ एवं ४ भाव में बृहस्पति हो तो गृह की आयु ८० वर्ष होती है। एक भी ग्रह शत्रु-नवांश में होकर ७ या १० भाव में स्थित हो तो इस प्रकार का गृह एक वर्ष के भीतर दूसरे व्यक्ति के हाथ में चला जाता है।

भूमि का ढलान भी गृह-निर्माण में विचारणीय होता है। ब्राह्मण के गृह की भूमि का ढलान उत्तर दिशा में, क्षत्रिय का पूर्व दिशा में, वैश्य का दक्षिण दिशा में एवं शूद्र का पश्चिम दिशा में होना चाहिए।

पूर्व से प्रारम्भ कर चारो दिशाओं में गृह-मुख के अनुसार १६ गृह बनते हैं। उनके नाम हैं—ध्रुव, धान्य, जय, नन्द, खर, कान्त, मनोरम, सुमुख, दुर्मुख, ग्रञ्च या क्रूर, रिपुद, वित्तद, नाशद, आक्रन्द, विपुल एवं विजय। इनके फल भी इनके नाम के अनुसार कहे गये हैं।

नृप एवं नृप-सदृश व्यक्तियों के गृह में १६ कक्षों का विधान प्राप्त होता है। ईशान कोण से प्रारम्भ कर पूर्व दिशा में देव-गृह, सर्ववस्तु-संग्रहकक्ष, स्नान-गृह एवं मथनगृह होना चाहिए। आग्नेय कोण में रसोई, इसके पश्चात् दक्षिण में घृतकक्ष, शयनकक्ष एवं शौचालय होना चाहिए। नैर्ऋत्य कोण शस्त्रागार के लिए प्रशस्त है। पश्चिम दिशा में विद्याभ्यास गृह, भोजन-गृह एवं रोदन कक्ष (कोप भवन) होना चाहिए। वायव्य से प्रारम्भ कर उत्तर दिशा में क्रमशः धान्य-गृह, रति-गृह, भाण्डार एवं औषध-गृह निर्मित होना चाहिए।

गृह के समीप स्थित वस्तुओं एवं अन्य आवासों का प्रभाव गृहस्वामी पर पड़ता है। गृहस्वामी को अपना आवास सचिवालय, देवालय, चौराहे एवं धूर्त व्यक्ति के निकट नहीं बनवाना चाहिए। इनके अतिरिक्त गृह के निकट स्थान का प्रधान वृक्ष, दीमक की बाँबी, बिल एवं गड्ढा आदि भी दुःख के कारण बनते हैं।

गृह के निर्माण के पश्चात् गृहस्वामी अपने परिवार, प्रजाजन एवं पशुओं के साथ सुख-शान्ति एवं कल्याणपूर्वक जीवन बिता सके एवं अपने जीवन में समृद्धि तथा वृद्धि प्राप्त सके, इसके लिए गृहप्रवेश के शुभ-मुहूर्त पर विचार किया गया है। शुभ-समय के ज्ञान के लिए गृहप्रवेश का लग्न-फल, वाम-रवि विचार, कलश-चक्र एवं अग्नि-चक्र आदि का विचार किया गया है।

विषय-विश्लेषण

पूरे ग्रन्थ के विषय-वस्तु को तीन स्तरों पर रखा जा सकता है—

१. ज्योतिषपरक विचार—गृह प्रकरण में वर्ग-मैत्री, काकिणी, वर्ग एवं राशि के अनुसार दिशा विचार, मास, नक्षत्र, पक्ष, तिथि, वार आदि का विचार, वृषभादि चक्र, शकुन विचार, आयादि, स्थिति एवं वेध के अनुसार द्वारों के फल, गृहारम्भ एवं

गृह-प्रवेश के कालादि विचार इस श्रेणी में आते हैं। इन सभी विचारों का उद्देश्य है— गृहारम्भ से लेकर सम्पूर्ण गृह-निर्माण विना किसी विघ्न-बाधा के सम्पन्न हो सके एवं गृह-निर्माण के पश्चात् गृहस्वामी सुखपूर्वक जीवनयापन कर सके।

२. गृह का परिवेश—इसके अन्तर्गत गृह के चतुर्दिक् वातावरण पर विचार किया जाता है। गृह के समीप वृक्ष, गृह के समीप अन्य भवन एवं आसपास की भूमि का दोष-हीन होना विचारणीय होता है। इनका भी गृहस्थ के जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

३. वास्तुशास्त्रीय पक्ष—इसके अन्तर्गत भूमि का चयन, मृत्तिका-परीक्षा, भू-परीक्षण, भूमि-प्लव, गृहस्वामी की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार गृह का माप, द्वार की स्थिति एवं माप, गृह की भित्ति की लम्बाई, चौड़ाई एवं ऊँचाई आदि का विचार किया जाता है। इस प्रकार यह गृह-निर्माण के तकनीकी पक्ष पर प्रकाश डालता है।

इस प्रकार ग्रन्थकर्ता ने प्राचीन परम्परा के अनुसार गृह-निर्माण के विधि-विधान को संक्षेप में प्रस्तुत किया है।

कृतवेदिता-निवेदन

'गृहवास्तुप्रदीप' संज्ञक शब्दमय दीप सर्वप्रथम 'जगतः पितरौ' पार्वती-परमेश्वर के चरणों के समीप निवेदित करती हूँ, जिनकी कृपा एवं वरदहस्त के विना यह कार्य निर्विघ्न पूर्ण नहीं हो सकता था। इस कार्य में गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद के पूर्वप्राचार्य प्रो. गयाचरण त्रिपाठी जी ने मुझे सत्परामर्श एवं मार्गदर्शन प्रदान किया, इसके लिए मैं हृदय से उनकी ऋणी हूँ एवं आभार व्यक्त करती हूँ। मैं अपने पति डॉ. राधेकृष्ण पाण्डेय जी की कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य की सम्पन्नता में हर-सम्भव सहयोग दिया। साथ ही, उन सभी की कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया।

अन्त में, मैं चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने ग्रन्थ को प्रकाशित कर सुर-भारती के उपासकों के सम्मुख प्रस्तुत किया। ग्रन्थ में हुई त्रुटियों को मानवीय दुर्बलता समझकर क्षमा करने एवं अपने अमूल्य सुझाव देने के लिए सुधी-पाठकों से निवेदन करती हूँ।

मंगलकामनाओं के साथ—

विदुषा वशंवदा
शैलजा पाण्डेय

विषयसूची

○

गृह-वास्तु : एक विहंगमावलोकन

मनुष्य के ऊपर जीवन-पर्यन्त उसके आवास का प्रभाव पड़ता है। गृह-निर्माण का जीवन में अत्यन्त महत्त्व है, अतः इसका निर्माण गम्भीर विचारपूर्वक एवं अत्यन्त सावधानी के साथ कराना चाहिये। गृह-निर्माण में सामान्यतया जो बातें विचारणीय होती हैं, उन पर यहाँ दृष्टिपात किया जा रहा है।

स्थान-विचार

गृह-निर्माण के लिये प्रथमतः ग्राम एवं नगरादि स्थान का चयन एवं गृहकर्त्ता के लिये उसकी अनुकूलता पर विचार करना चाहिये। जिस नगर, ग्राम (मोहल्ला, कालोनी आदि) में गृह का निर्माण कराना हो, उसके नाम की राशि एवं गृहकर्त्ता के नाम की राशि का विचार करना चाहिये। स्थान की राशि गृहकर्त्ता के नाम की राशि से दूसरी, पाँचवीं, नवीं, दसवीं एवं ग्याहरवीं हो तो वह शुभ होती है। शेष राशियों वाले स्थान त्याज्य होते हैं—

नामर्क्षाद् द्विसुताङ्कदिग्भवगतो ग्रामः शुभो नान्यथा।

इसी तथ्य को प्रकारान्तर से 'ज्योतिस्सागर' में इस प्रकार कहा गया है—

प्रथमे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठगे।
तुर्याष्टद्वादशे रोगः शेषस्थाने शुभं भवेत्॥

अपनी राशि से जिस ग्राम में बसने की इच्छा हो, उस ग्राम की राशि १,७ हो तो शत्रुता; ३,६ हो तो हानि और ४,८,१२ हो तो रोग होता है। शेष राशियाँ (२,५,९,१०,११) शुभ होती हैं। जैसे 'नीलसागर' नामक व्यक्ति 'गोरखपुर' नामक स्थान में बसना चाहता है। 'नीलसागर' की नाम-राशि वृश्चिक होगी एवं 'गोरखपुर' की कुम्भ होगी। वृश्चिक राशि से कुम्भ राशि चौथी है। अतः नीलसागर को गोरखपुर में बसने से रोग का कष्ट हो सकता है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार ग्राम एवं गृहकर्त्ता की नाम-राशि यदि एक हो तो शुभ होता है—

स्वनाम्नस्तु राशेश्च यश्चैव राशिस्तदाद्वीषुरत्नेशदिक्सम्मितश्च।
स वै शोभनो ग्राम नान्यः शुभश्च प्रकुर्याद् गृहं यत्पुरे सत्फलं च॥

(गृहरत्नविभूषण)

'मुहूर्त-रत्नाकर' के अनुसार ग्रामादि एवं गृहकर्त्ता के शुभाशुभत्व का विचार इस प्रकार किया जाता है। ग्रामादि के नामाक्षर की संख्या में ४ से गुणा करना चाहिये। गुणनफल में गृहकर्त्ता के नाम के अक्षरों की संख्या जोड़ कर ७ से भाग देना चाहिये। शेष

१ हो तो पुत्र-लाभ, २ होने पर धन-प्राप्ति, ३ होने पर व्यय, ४ होने पर आयु, ५ होने पर शत्रु-क्षय, ६ होने पर राज्य-लाभ एवं ७ होने पर मरण-भय प्राप्त होता है—

ग्रामनामाक्षरं ग्राह्यं चतुर्भिर्गुणयेत्ततः।
नरनामाक्षरं योज्यं सप्तभिर्भागमाहरेत्॥
पुत्रलाभो धनप्राप्तिः व्ययः आयुः क्रमेण च।
शत्रुनाशं राज्यलाभं निश्शेषे मरणं ध्रुवम्॥

यथा ब्रह्मपुर स्थान में विश्वनाथ प्रसाद को गृह-निर्माण कराना है। स्थान के नाम में ४ अक्षर है। ४ में ४ का गुणा करने पर १६ होता है। गृहकर्त्ता के नाम में ७ अक्षर हैं, अत: १६ + ७ = २३ होता है। २३ में ७ का भाग देने पर २ शेष बचता है। इस प्रकार विश्वनाथ प्रसाद के लिये ब्रह्मपुर स्थान धनप्राप्ति का परिणाम देने वाला है एवं आवास के लिये प्रशस्त है। इसी प्रकार वास्तु-ग्रन्थों में अन्य विधियाँ भी प्राप्त होती हैं।

ग्रामादि में दिशा-निर्धारण

ग्रामादि के चयन के पश्चात् उसकी कौन-सी दिशा गृहकर्त्ता के लिये अनुकूल होगी, यह तथ्य विचारणीय होता है। वास्तु-शास्त्र में राशि एवं वर्ग के अनुसार निषिद्ध दिशा का उल्लेख प्राप्त होता है। वृष, सिंह, मकर और मिथुन राशि वालों को ग्राम के मध्य में, वृश्चिक राशि वालों को दक्षिण में, कर्क राशि वालों को अग्नि-कोण में, कन्या राशि वालों को दक्षिण में, कर्क राशि वालों को नैर्ऋत्य कोण में, धन राशि वालों को पश्चिम में, तुला राशि वालों को वायव्य कोण में, मेष राशि वालों को उत्तर में एवं कुम्भ राशि वालों को ईशान कोण में नहीं बसना चाहिये। इसके अतिरिक्त अवर्ग पूर्व दिशा में, कवर्ग अग्नि कोण में, चवर्ग दक्षिण में, टवर्ग नैर्ऋत्य में, तवर्ग पश्चिम में, पवर्ग वायव्य में, यवर्ग उत्तर में एवं शवर्ग ईशान में बली होते हैं। अपने वर्ग से पाँचवाँ वर्ग शत्रु होता है। अत: अपने से पाँचवें वर्ग में निवास नहीं करना चाहिये। जैसे कि अवर्ग नाम वालों को पश्चिम में आवास नहीं बनाना चाहिये। 'मुहूर्तचिन्तामणि' में यही तथ्य इस प्रकार वर्णित है—

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च।
कर्को धनुस्तलभमेषघटाश्च तद्वद्
वर्गाः स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्र्याः॥

प्रत्येक दिशा का अपना-अपना गरुड़ आदि वर्ग भी होता है। पूर्व दिशा का गरुड़, आग्नेय का मार्जार, दक्षिण का सिंह, नैर्ऋत्य का श्वान, पश्चिम का सर्प, वायव्य का मूषक, उत्तर का गज़ एवं ईशान का शशक वर्ग है। इसमें भी अपने से पाँचवाँ वर्ग शत्रु होता है। अकारादि वर्ग एवं गरुड़ आदि वर्ग को इस प्रकार समझा जा सकता है—

ईशान	पूर्व	आग्नेय
शवर्ग शशक	अवर्ग गरुड़	कवर्ग मार्जार
यवर्ग गज (उत्तर)		चवर्ग सिंह (दक्षिण)
पवर्ग मूषक	तवर्ग सर्प	टवर्ग श्वान
वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य

इसी तथ्य को इस श्लोक में स्पष्ट किया गया है—

वर्गाः खगेशमार्जारसिंहश्वसर्पमूषकाः ।
इभावी पूर्वतस्तेषां स्ववर्गात् पञ्चमो रिपुः ।
तस्मात् स्ववैरिवर्गस्यि दिशि वासो न शोभनः ॥

(वास्तुरत्नावली)

इसके अतिरिक्त ग्रामादि के कोणों में चरकी, विदारी, पूतना एवं पापराक्षसी का निवास होता है। अतः चारो वर्णों को इन कोणों में अपना आवास नहीं बनवाना चाहिये। वहाँ अन्त्यज आदि सङ्कर जातियों का आवास ही प्रशस्त होता है।

भूमि-चयन

ग्राम-नगरादि स्थान का चयन एवं उनमें अपने अनुकूल दिशा सुनिश्चित कर लेने के पश्चात् गृहकर्त्ता को अपने वर्ण एवं राशि के अनुकूल भूमि का चयन करना चाहिये। भूमि के कुछ गुण-धर्म सभी मनुष्यों के लिये समान होते हैं तथा कुछ अपने वर्ण एवं राशि के अनुसार विचारणीय होते हैं। भूमि-चयन के अन्तर्गत भूमि की आकृति, रंग, गन्ध, स्वाद, भूमि पर स्वतः उत्पन्न कुशादि, ढ़लान एवं परिवेश आदि आते हैं।

भूमि की आकृति

भवन-निर्माण हेतु भूमि की प्रशस्त आकृति आयताकार एवं चौकोर होती है। कहीं-कहीं चौकोर (सम-चतुरस्र) भूमि को प्रशस्त नहीं माना गया है, किन्तु आयताकार भूमि की सर्वत्र प्रशंसा की गई है। इनके अतिरिक्त भद्रासन एवं वृत्ताकार भूमि की भी प्रशंसा प्राप्त होती है—

आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः ।
भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविवर्धनम् ।।

(वास्तुसौख्य)

आयताकार भूमि सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाली, चौकोर भूमि धन प्रदान

करने वाली, भद्रासन भूमि अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली एवं वृत्ताकार भूमि पुष्टि (हर प्रकार की वृद्धि) प्रदान करने वाली होती है। इनके अतिरिक्त भूमि की आकृतियाँ चक्राकार, विषम-बाहु, त्रिकोण, शकटाकृति, दण्ड, पणवाकृति, मुरज, बृहन्मुख, व्यजन, कूर्मपृष्ठ, धनुषाकृति एवं सर्वाकृति होती हैं। ये सभी आकृतियाँ त्याज्य होती हैं। इनका दुष्परिणाम 'वास्तुसौख्य' में इस प्रकार वर्णित है—

चक्र	दारिद्र्य
विषम बाहुक (सभी भुजायें असमान हों)	शोक
त्रिकोण	राजभय
शकट	धन का नाश
दण्ड	पशु-नाश
पणव	धन-क्षय
मुरज	पत्नी-नाश
बृहन्मुख (आगे की ओर चौड़ा)	बन्धु-नाश
व्यजन (पंखे का आकार)	धन-नाश
कूर्माकार	बन्धन एवं पीडा
सर्पाकार	धन-नाश
धनुषाकार	चोरी का भय

अत: कल्याण की कामना करने वाले गृहस्थ को आयताकार, चौकोर, वृत्ताकार एवं भद्रासन (आयताकार का एक भेद) भूमि का ही चयन करना चाहिये—

आयतं चतुरस्त्रन्तु वृत्तं भद्रासनं तथा।
चत्वार्येतानि कार्याणि गृहस्थेन श्रियोऽर्थिना॥

(वास्तुसौख्य)

रंग

भूमि की मिट्टी के रंग के अनुसार इस बात का विचार किया जाता है कि किस रंग की भूमि किस वर्ण वाले गृहस्थ के लिये प्रशस्त होगी। श्वेत रंग की भूमि ब्राह्मणों के, लाल रंग की भूमि क्षत्रियों के, पीत वर्ण की भूमि वैश्यों के तथा कृष्ण वर्ण की भूमि शूद्रों के अनुकूल होती है। 'वास्तुप्रबोध' के अनुसार—

श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम्।
विशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येषां विमिश्रिता॥

गन्ध

घृत-गन्ध वाली भूमि ब्राह्मणों के लिये, रक्त-गन्ध वाली भूमि क्षत्रियों के लिये,

अन्न के गन्ध वाली भूमि वैश्यों के लिये एवं मद्य के गन्ध वाली भूमि शूद्रों के लिये प्रशस्त कही गई है—

घृतासृगन्नमद्यानां गन्धाश्च क्रमतः शुभाः।
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातीनां वास्तुभूमिषु॥

(वास्तुरत्नावली)

स्वाद

मधुर स्वाद वाली भूमि ब्राह्मणों के लिये, कसैली स्वाद वाली क्षत्रियों के लिये, अम्ल स्वाद वाली भूमि वैश्यों के लिये एवं कटु स्वाद वाली भूमि शूद्रों के लिये सुखद कही गई है—

अनुवर्णवृद्धिकरी मधुरकषायाम्लकटुका च।

(बृहत्संहिता)

कुशादि युक्त भूमि

जिस भूमि पर कुश उत्पन्न हो, वह ब्राह्मणों के लिये प्रशस्त होती है। इसी प्रकार शरकण्डों से भरी भूमि क्षत्रियों के लिये, कुश-कासयुक्त भूमि वैश्यों के लिये एवं तृण-धान्ययुक्त भूमि शूद्रों के लिये शुभ होती है—

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला॥

(वास्तुरत्नावली)

भूमिप्लव (ढ़लान)

उत्तर की ओर ढलान वाली भूमि ब्राह्मणों के लिये, पूर्व-प्लवा भूमि क्षत्रियों के लिये, दक्षिण-प्लवा भूमि वैश्यों के लिये एवं पश्चिम-प्लवा भूमि शूद्रों के लिये प्रशस्त होती है। इनमें ब्राह्मण राशि का गृह-कर्त्ता किसी भी भूमि पर गृह-निर्माण करा सकता है, किन्तु अन्य तीन राशि वालों को अपने-अपने अनुकूल ढ़लान वाली भूमि पर ही गृह-निर्माण कराना चाहिये—

सौम्यादिप्लवभूतले विरचयेद् विप्रादिकोऽग्र्योऽखिले।

(मुहूर्तमार्तण्ड)

उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव।
विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णं यथेष्टमन्येषाम्॥

(वास्तुसौख्य)

भूमि-प्लव ईशानादि कोणों में भी सम्भव है। वास्तु-ग्रन्थों में इनका फल इस प्रकार वर्णित है—

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम्।
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च॥
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही।
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभाः प्लवतत्परा।

(बृहद्वास्तुमाला)

ईशान कोण में ढ़लान वाली भूमि गृहकर्त्ता को विद्या प्रदान करती है। अग्निकोण में अग्नि-दाह, नैर्ऋत्य कोण में धन-हानि तथा वायव्य कोण में ढ़लान वाली भूमि प्रवासरूपी फल प्रदान करती है। पूर्व दिशा में ढ़लान वाली भूमि लक्ष्मी, दक्षिण ढ़लान वाली मृत्यु, पश्चिम ढ़लान वाली भूमि पुत्र-नाश एवं उत्तर की ओर ढ़लान वाली भूमि धन प्रदान करती है। मध्य में ढ़लान वाली एवं गृह के सम्मुख यदि गृह की ओर ढ़लान वाली भूमि हो तो वह भूमि त्याज्य होती है। दिशाओं एवं कोणों के प्रवाह को इस प्रकार समझा जा सकता है—

पूर्व	श्री
आग्नेय	दाह
दक्षिण	मृत्यु
नैर्ऋत्य	धनहानि
पश्चिम	सुत-हानि
वायव्य	प्रवास
उत्तर	धनलाभ
ईशान	विद्यालाभ

तात्पर्य यह है कि गृह-भूमि का ढ़लान ईशान कोण, पूर्व एवं उत्तर शुभ है, शेष त्याज्य है। भूमि के सतह की ऊँचाई एवं ढ़लान को ध्यान में रखते हुये वास्तुविदों ने विभिन्न प्रकार के वास्तु-भेदों का वर्णन किया है। 'वास्तु-प्रबोध' में गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ, दैत्यपृष्ठ एवं नागपृष्ठ भूमियों का वर्णन प्राप्त होता है, जो इस तालिका में स्पष्ट है—

नाम	लक्षण	वास-परिणाम
गजपृष्ठ	दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य एवं वायव्य में उच्च	लक्ष्मी से एवं आयु से पूर्ण
कूर्मपृष्ठ	मध्य में ऊँची एवं चारो ओर नीची	नित्य उत्साह, धन-धान्य की विपुलता
दैत्यपृष्ठ	पूर्व, आग्नेय एवं ईशान कोण में ऊँची एवं पश्चिम में नीची	लक्ष्मी नहीं आती तथा धन, पुत्र एवं पशुओं की हानि होती है।
नागपृष्ठ	पूर्व एवं पश्चिम में दीर्घ एवं दक्षिण-उत्तर में उच्च	मृत्यु, पत्नी एवं पुत्र की हानि तथा शत्रु-वृद्धि।

'बृहद्वास्तुमाला' ग्रन्थ के भूमि-लक्षण प्रकरण (श्लोक ४४-६४) में भूमि की ऊँचाई एवं ढ़लान को आधार मानकर वास्तु के अनेक भेद प्रस्तुत किये गये हैं। इन्हें अधोलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

वास्तुसंज्ञा	ऊँची	नीची	परिणाम
यम्रवीथी	उत्तर	दक्षिण	
गजवीथी	दक्षिण	उत्तर	
भूतवीथी	ईशान	नैर्ऋत्य	
नागवीथी	आग्नेय	वायु	
वैश्वानरी	वायव्य	अग्नि	
धनवीथी	नैर्ऋत्य	ईशान	
पितामह	पूर्व एवं आग्नेय के मध्य	पश्चिम एवं वायव्य के मध्य	सुखद
सुपथ	दक्षिण एवं आग्नेय के मध्य	उत्तर एवं वायव्य के मध्य	शुभ
दीर्घायु	नैर्ऋत्य एवं दक्षिण के मध्य	उत्तर एवं ईशान के मध्य	कुल-वृद्धि
पुण्यक	पश्चिम एवं नैर्ऋत्य के मध्य	पूर्व एवं ईशान के मध्य	चारो वर्ण के लिए शुभ
अपथ	वायव्य एवं पश्चिम के मध्य	पूर्व एवं आग्नेय के मध्य	वैर एवं कलह
रोगकृत्	उत्तर एवं वायव्य के मध्य	दक्षिण एवं आग्नेय के मध्य	रोग
अर्गल	उत्तर एवं ईशान के मध्य	दक्षिण एवं नैर्ऋत्य के मध्य	पापनाशिनी
श्मशान	पूर्व एवं ईशान के मध्य	पश्चिम एवं नैर्ऋत्य के मध्य	कुल-नाश
श्येनक	नैर्ऋत्य, ईशान तथा वायव्य	आग्नेय	मृत्युकारक
श्वमुख (१)	ईशान, आग्नेय तथा पश्चिम	नैर्ऋत्य	दरिद्रता
ब्रह्मघ्न	नैर्ऋत्य, आग्नेय तथा ईशान	पूर्व, वायव्य	निवास के अयोग्य
स्थावर	आग्नेय	नैर्ऋत्य, ईशान तथा वायव्य	शुभ
स्थण्डिल	नैर्ऋत्य	आग्नेय, वायव्य एवं ईशान	शुभ

शाण्डुल	ईशान	वायव्य, आग्नेय तथा नैर्ऋत्य	अशुभ
सुस्थान	नैर्ऋत्य, आग्नेय ईशान	उत्तर	ब्राह्मणों के लिये शुभ
सुतल	नैर्ऋत्य, वायव्य पश्चिम	पूर्व	क्षत्रियों के लिये प्रशस्त
चर	उत्तर, ईशान वायव्य	दक्षिण	वैश्यों के लिये शुभ
श्वमुख (२)	ईशान, पूर्व, आग्नेय	पश्चिम	शूद्रों के लिये शुभ

इस प्रकार प्लव की दृष्टि से वास्तु-क्षेत्र के उपर्युक्त भेद बनते हैं।

प्रशस्त भूमि

भूमि-चयन में उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान देने के साथ-साथ मन का प्रमाण भी स्वीकार करना चाहिये। सबसे बड़ा प्रमाण मनुष्य का अपना अन्तःकरण होता है। जिस भूमि पर पहुँच कर मनुष्य का मन प्रसन्न हो जाय एवं सुख की अनुभूति हो, वह भूमि उस व्यक्ति के लिये प्रशस्त होती है। इस सम्बन्ध में सभी शास्त्रकार एकमत हैं। वराहमिहिर के अनुसार जिस भूमि पर शुभ लता एवं वृक्षादि हो, भूमि चिकनी, सुगन्धित, समतल तथा तन-मन के थकान को दूर करने वाली हो, वहाँ गृह का निर्माण गृहकर्त्ता को धन, समृद्धि, सुख तथा शान्ति प्रदान करता है—

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम्।
अत्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानाम्
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु॥

(बृहत्संहिता)

निषिद्ध भूमि एवं परिवेश

जिस भूमि पर गृह बनवाना हो, उसके पूर्व में बरगद, दक्षिण में पाकड़, पश्चिम में पीपल एवं उत्तर में गूलर का वृक्ष नहीं होना चाहिये। इनसे गृहस्वामी को क्रमशः अग्निभय, प्रमाद, शस्त्रभय एवं उदररोग होता है—

अश्वत्थोऽग्निभयं कुर्यात् प्लक्षः कुर्यात् प्रमादकम्।
न्यग्रोधः शस्त्रसम्पातं कुक्षिरोगमुदुम्बरः॥

(बृहद्वास्तुमाला)

भूमि कटी-फटी न हो, ऊषर न हो, भूमि के भीतर (लगभग १ पुरुष-प्रमाण की गहराई में) हड्डी आदि न हो, भूमि ऊबड़-खाबड़ न हो अर्थात् समतल हो, भूमि में

दीमक की बाँबी न हो तथा जहाँ गृह बनवाना हो वहाँ चैत्य वृक्ष (ग्राम का प्रधान वृक्ष, जहाँ देवी-देवताओं आदि का स्थान हो) नहीं होना चाहिये—

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकारोहिणी तथा ।
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा ।

× × × × × × × ×

चैत्ये भयं गृहकृतं वल्मीकश्वभ्रसंकुले विपदः ।

(वास्तुसौख्य)

वराहमिहिर के अनुसार गृह के समीप मन्त्री का आवास (सचिवालय), धूर्त व्यक्ति का निवास, देवकुल, चौराहा, ग्राम का प्रधान वृक्ष, दीमक की बाँबी, जीव-जन्तुओं के बिल, गड्ढा एवं कछुए की आकृति (बीच से उठी) नहीं होनी चाहिये । यदि गृह के निकट मन्त्री का आवास हो तो धन की हानि, धूर्त व्यक्ति का गृह हो तो पुत्र का वध, देव-कुल हो तो व्याकुलता, चौराहा हो तो अपयश, चैत्य-वृक्ष हो तो ग्रह आदि (भूत-प्रेत आदि की भी) की बाधा, दीमक की बाँबी तथा बिल हों तो विपत्ति, गड्ढा होने पर प्यास तथा भूमि बीच से उभरी हो तो धन का विनाश होता है—

सचिवालयेऽर्थनाशो धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे ।
उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाकीर्तिः ॥
चैत्ये भयं ग्रहकृतं वल्मीकश्वभ्रसङ्कुले विपदः ।
गर्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥

(बृहत्संहिता, ५२/८७-८९)

भूमि-परीक्षा

मनोनुकूल भू-चयन के पश्चात् भूमि की परीक्षा करनी चाहिये । भू-परीक्षण की कई विधियाँ हैं, किन्तु सर्वाधिक प्रचलित विधि जल एवं मृत्तिका-परीक्षा है ।

जलपरीक्षा—भूमि में एक हाथ लम्बा, चौड़ा एवं गहरा गड्ढा खोदना चाहिये । उस गड्ढे में जल भरकर उससे कुछ कदम, लगभग १०० कदम दूर जाकर पुन: उस गड्ढे के पास जाना चाहिये । यदि गड्ढा जल से भरा हो तो गृह-निर्माण के लिये भूमि उत्तम, चौथाई जल सूख जाय तो मध्यम एवं गड्ढा आधे जल से युक्त हो तो भूमि गृह-निर्माण के लिये अनुपयुक्त होती है ।

श्वभ्रमथवाम्बुपूर्णं पदशतमित्वा गर्तस्य यदि नोनम् ।
तद्धन्यं यश्च भवेत्पलानि यां स्वाटकं चतुष्षष्टिः ॥

(वास्तुसौख्य)

जल-परीक्षा की दूसरी विधि के अनुसार सूर्यास्त के समय पूर्वोक्त माप का गड्ढा खोद कर जल से भरना चाहिये । दूसरे दिन प्रात:काल गड्ढा देखना चाहिये । यदि गड्ढे में जल बचा रहे तो भूमि प्रशस्त, जल न रहे किन्तु मिट्टी गीली रहे तो मध्यम एवं गड्ढे में यदि दरारें पड़ी हों तो भूमि गृह-निर्माण के लिये उपयुक्त नहीं होती है—

श्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत् ।
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसत्स्फाटितम् ॥

(वास्तुप्रबोध)

मृत्तिका परीक्षा—पूर्वोक्त माप के गड्ढे से निकली मिट्टी से पुनः गड्ढे को भरना चाहिये। यदि गड्ढा भरने के पश्चात् मिट्टी बच जाय तो भूमि गृह-निर्माण के लिये उत्तम, यदि पूरी मिट्टी गड्ढे में समा जाय तो भूमि सामान्य एवं मिट्टी कम पड़े तो वह भूमि गृह-निर्माण के योग्य नहीं होती है—

गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् ।
यद्यूनमनिष्टं तत्समे समं धन्यमधिकं यत् ॥

(वास्तुसौख्य)

इन दो विधियों के अतिरिक्त भी भू-परीक्षण की विधियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं—

स्वरपरीक्षा—यदि आघात करने पर भूमि से गम्भीर स्वर उत्पन्न हो तो वह भूमि ठोस होती है एवं गृह निर्माण के लिये उपयुक्त होती है। भूमि से उत्पन्न स्वर की तुलना मृदङ्ग, वल्लकी, वेणु, दुन्दुभी, हाथी, अश्व अथवा समुद्र के गर्जन के साथ की गई है—

मृदङ्गवल्लकीवेणुदुन्दुभीनां समा ध्वनौ ।
द्विपाश्वाब्धिसमस्वाना चेति स्युर्भूमयः शुभाः ॥

(समराङ्गणसूत्रधार, १०।५१)

स्पर्शपरीक्षा—जो भूमि ग्रीष्म काल में शीतल, शीत काल में उष्ण एवं वर्षा ऋतु में शीतोष्ण होती है, वह भूमि गृह-निर्माण के लिये प्रशस्त होती है—

घर्मागमे हिमस्पर्शा या स्यादुष्णा हिमागमे ।
प्रावृष्युष्णहिमस्पर्शा सा प्रशस्ता वसुन्धरा ॥

(समराङ्गणसूत्रधार, १०।५०)

पुष्पपरीक्षा—भूमि पर खोदे गये गर्त में श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण वर्ण का पुष्प रात्रि में डाल देना चाहिये। प्रातःकाल जिस वर्ण का पुष्प सबसे अधिक प्रफुल्लित दिखाई पड़े, उस वर्ण के मनुष्य के लिये वह भूमि सर्वाधिक उपयुक्त होती है। इस विधि का वर्णन 'समराङ्गणसूत्रधार' एवं 'बृहत्संहिता' दोनों में प्राप्त होता है। वराहमिहिर के अनुसार—

श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्मिन् प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम् ।
तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन्मनो रमते ॥

(बृहत्संहिता)

दीपपरीक्षा—इस विधि का वर्णन मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा

समराङ्गणसूत्रधार आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। भूमि में एक हाथ का गर्त खोद कर चार दिशाओं में मिट्टी के दीपक में चार बत्तियाँ जलानी चाहिये। यदि सभी दिशाओं के दीप देर तक जलते रहें तो वह भूमि सभी वर्णों के लिये उपयुक्त होती है, अन्यथा जिस दिशा की बत्ती देर तक जले, उस वर्ण के लिये वह भूमि अधिक प्रशस्त होती है। मत्स्य-पुराण में पूर्व से प्रारम्भ कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की दिशा ग्रहण की गई है; जबकि समराङ्गणसूत्रधार में उत्तर दिशा से ब्राह्मणादि का क्रम लिया गया है—

पूर्वादिं गृह्णीयाद् वर्णानामानुपूर्वशः।

(मत्स्यपुराण, २५३।१५)

खातस्योदक्प्रभृतिषु दिक्षु प्रज्वालयीत वा।
दीपान् यस्यां चिरं तिष्ठेत् तद्वर्णेष्टप्रदा हि सा॥

(समराङ्गणसूत्रधार, १०।७४)

पुष्प एवं दीपपरीक्षा शकुन की दृष्टि से भूमिपरीक्षा है।

बीजपरीक्षा—भूमि-परीक्षा की यह विधि मत्स्यपुराण में प्राप्त होती है। भूमि पर हल चला कर सभी प्रकार के बीज बो देना चाहिये। यदि बीज ३ रात में उगे तो भूमि उत्तम, पाँच रात में उगे तो मध्यम एवं सात रात में उगे तो कनिष्ठ होती है। इनसे इतर भूमि त्याज्य होती है—

त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि।
ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्वर्जनीयतरा सदा॥

(मत्स्यपुराण, २५२।१८)

गृह-निर्माण में ज्योतिषीय पक्ष पर विचार

भूमि-चयन के पश्चात् गृह-निर्माण से पूर्व षड्-वर्ग-शुद्धि का विचार किया जाता है। इसके अन्तर्गत आय, व्यय, अंश, नक्षत्र, योनि, तिथि, वार आते हैं।

आय—गृह-निर्माण के आरम्भ करने से पूर्व आय ज्ञात किया जाता है। आय आठ होते हैं—ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज एवं काक। ये क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर एवं ईशान के स्वामी कहे गये हैं। विश्वकर्मा के अनुसार भूमि की चौड़ाई में लम्बाई का गुणा कर क्षेत्रफल प्राप्त करना चाहिये। गुणनफल में ८ का भाग देने पर जो शेष बचे, वह आय होता है—

विस्तारेण हतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्ततः।
यच्छेषं स भवेदायो ध्वजाद्यास्तेषु अष्टधा॥

(वास्तुसौख्य)

१ शेष होने पर ध्वज, २ पर धूम, ३ पर सिंह, ४ पर श्वान, ५ पर वृष, ६ पर खर, ७ पर गज एवं ८ पर काक आय होता है। इन आयों के द्वारा गृह के प्रमुख

द्वार का निर्धारण किया जाता है। इनमें धूम, श्वान, खर एवं काक सामान्य गृहस्थ के लिये त्याज्य होते हैं। इन आयों के प्राप्त होने पर अगले दाहिने आय को स्वीकार करना चाहिये। यथा—धूम आय होने पर सिंह आय स्वीकार करना चाहिये। इनका विचार गृह-उपकरणों—शय्या, पादुका, आसन आदि के निर्माण में भी किया जाता है।

व्यय—क्षेत्रफल में ८ का भाग देने पर प्राप्त भागफल व्यय होता है—

तत्र चाङ्केऽष्टभिर्भक्ते योऽङ्कः स स्याद् गृहे व्ययः।

(वास्तुसौख्य)

व्यय तीन होते हैं—पैशाच, राक्षस एवं यक्ष। आय-व्यय समान हो तो पैशाच, व्यय आय से अधिक हो तो राक्षस एवं कम हो तो यक्ष होता है। व्यय आय से अधिक नहीं होना चाहिये। कुछ विद्वानों का मत है कि तृणादि द्वारा निर्मित गृह (झोपड़ी) तथा ३२ हाथ से अधिक के गृह में आय-व्यय का विचार नहीं करना चाहिये—

यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम्।
आयव्ययौ भूमिशुद्धिं तृणगेहे न चिन्तयेत्।

(वास्तुसौख्य)

नक्षत्र—गृह की लम्बाई एवं चौड़ाई के गुणन-फल में ८ का गुणा करना चाहिये। प्राप्त गुणनफल में २७ का भाग देने पर गृह का नक्षत्र ज्ञात होता है—

अष्टभिर्गुणिते तस्मिन् मूलराशौ विशारदैः।
सप्तविंशतिभक्ते यच्छेषं तद्गृहभं भवेत्॥

(वास्तुसौख्य)

तारा—गृहकर्त्ता के नक्षत्र से गृह के नक्षत्र तक गणना करनी चाहिये। उसमें ९ से भाग देने पर शेष संख्या से तारा का ज्ञान होता है। ३,५ या ७ शेष रहे तो शुभ नहीं होता—

कर्तृभाद् गृहभं गण्यं गृहभाद् गेहनाथभम्।
गणयेन्नवहृच्छेषमशुभं त्रीषु सप्तमम्॥

(गृहरत्नविभूषण)

अंश—गृह के क्षेत्रफल में गृहकर्त्ता के नामाक्षर जोड़कर ३ से भाग देने पर अंश ज्ञात होता है। अंश तीन हैं—इन्द्र, यम एवं नृप। इनमें यम से बचना चाहिये।

योनि—अश्विनी आदि नक्षत्रों की अश्व, हस्ति, मेष, सर्प, श्वान, मार्जार, मूषक, गो, महिष, व्याघ्र, वानर, नकुल, सिंह, मृग आदि योनियाँ हैं। इनमें योनि-वैर का त्याग करना चाहिये। यथा—अश्व का महिष, सिंह का गज, मेष का वानर, नकुल का सर्प, मृग का श्वान, बिल्ली का मूषक एवं व्याघ्र का गौ से सहज वैर है।

तिथि-वार—क्षेत्रफल को १४ से गुणा कर ३० से भाग देना चाहिये। शेष

संख्या से प्रतिपदादि तिथियाँ ज्ञात होती हैं। इनमें अमावस्या एवं रिक्ता तिथियाँ (४,९,१४) गृह-कर्म में त्याज्य होती हैं—

शक्राहतं क्षेत्रफलं त्रिंशद्भक्तावशेषकम्।
प्रतिपदादितिथिर्ज्ञेया दर्शरिक्तां विवर्जयेत्॥

(वास्तुसौख्य)

वार ज्ञात करने के लिये क्षेत्रफल में ९ का गुणा कर गुणनफल में ७ का भाग देने से शेष संख्या से रवि-चन्द्रादि वार ज्ञात होते हैं। इनमें रवि, मंगल एवं शनिवार को गृहारम्भ नहीं करना चाहिये—

वाराः सूर्यारशन्यंशा सदा वह्निभयप्रदाः।

(वास्तुप्रबोध)

नाग-वास्तु

भूमि पर गृह-निर्माण का कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व नाग-वास्तु की स्थिति का भी विचार किया जाता है। गृहारम्भ के लिये उत्खनन कार्य किस मास में किस दिशा से प्रारम्भ किया जाय, इसका विचार नाग-वास्तु द्वारा किया जाता है। यह नाग-वास्तु वस्तुतः मास एवं राशियों से सम्बद्ध कालरूपी सर्प है। इसके सिर एवं पूँछ की ओर खुदाई न प्रारम्भ कर कुक्षि-स्थान पर खुदाई प्रारम्भ करनी चाहिये। नाग-वास्तु का सिर भाद्र, आश्विन एवं कार्तिक मास में पूर्व दिशा में; मार्गशीर्ष (अगहन), पौष एवं माघ में दक्षिण दिशा में, फाल्गुन, चैत्र एवं वैशाख में पश्चिम दिशा में तथा ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं श्रावण में उत्तर दिशा में होता है। पूँछ सिर के विपरीत दिशा में होती है। उपर्युक्त काल में (३-३ महीनों में) नाग की कुक्षि क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व में होती है। 'वास्तुसौख्य' के अनुसार—

पूर्वादिक् शिरः कृत्वा नागाः शेते त्रिभिस्त्रिभिः।
भाद्राद्यैर्वामपार्श्वेन तस्य क्रोडे शुभं गृहम्॥

शुभ-काल

गृहारम्भ के लिये शुभ समय फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण, आश्विन एवं कार्तिक मास हैं। इन मासों के भी शुक्ल पक्ष ग्राह्य होते हैं। ये मास गृहकर्त्ता को पुत्र-पौत्र एवं धन प्रदान करते हैं—

पौषफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः।
मासाः स्युः गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यफलप्रदाः॥
मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे।
ऊर्जे च गृहनिर्माणे पुत्रपौत्रधनप्रदम्॥

(वास्तुप्रबोध)

इसके अतिरिक्त राशियों पर सूर्य की स्थिति भी विचारणीय होती है। कुछ विद्वानों के मतानुसार मेष का सूर्य होने पर चैत्र मास में, वृष के सूर्य में ज्येष्ठ मास में, कर्क के सूर्य में आषाढ़ मास में, सिंह के सूर्य में भाद्र मास में, कुम्भ के सूर्य में आश्विन (क्वार) मास में, वृश्चिक के सूर्य में अगहन मास में, मृगशीर्ष के सूर्य में पौष मास में एवं मकर के सूर्य में माघ मास में गृहारम्भ किया जा सकता है—

केचिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे।
भाद्रे सिंहगते घटे आश्वियुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके।
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहे तथोर्जे न सत्॥

(वास्तुप्रबोध)

'वास्तुप्रबोध' में १२ मासों में गृहारम्भ का फल इस प्रकार वर्णित है—

चैत्र	व्याधि
वैशाख	धन, रत्न
ज्येष्ठ	मृत्यु
आषाढ़	नौकरों एवं रत्नों का लाभ
श्रावण	मित्र-लाभ
भाद्रपद	हानि
आश्विन	स्त्री-हानि
कार्तिक	धन-धान्य का लाभ
मार्गशीर्ष	धन-लाभ
पौष	चोरी का भय
माघ	अग्निभय
फाल्गुन	सुवर्ण आदि का लाभ

इन सबके अतिरिक्त हरि-शयन एवं भूमि-शयन के काल का भी विचार करना चाहिये।

गृहारम्भ के समय मास एवं सूर्य की स्थिति के साथ ही चन्द्रमा की स्थिति भी विचारणीय होती है। गृह के मुख्य द्वार के सम्मुख, पृष्ठ एवं वाम भाग में चन्द्रमा की स्थिति वर्जित है—

धनलाभः प्रवासः स्याद् रिपुश्चौरभयं क्रमात्।
दक्षाग्रवामपृष्ठस्थे गृहभर्तुर्निशाकरे।

× × × × × × ×

ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोर्हि अग्रे पृष्ठे न शस्यते।

(वास्तुसौख्य)

गृहारम्भ अर्धरात्रि में एवं मध्याह्न में भी नहीं करना चाहिये।

भू-शोधन एवं दिशा-निर्धारण

शिलान्यास से पूर्व भूमि का शोधन एवं दिशा-निर्धारण करना आवश्यक होता है। भूमि के भीतर जीवों की अस्थियाँ, कोयला, राख, केश तथा चमड़ा आदि हों तो उसे निकाल देना चाहिये। शल्य-ज्ञान की विधियाँ ज्योतिष-ग्रन्थों में वर्णित हैं। उपर्युक्त पदार्थ यदि भूमि के भीतर एक पुरुषमाप से अधिक नीचे हो तो उसका गृह पर प्रभाव नहीं होता है।

भूमि को वर्जित पदार्थों से रहित करने के पश्चात् झाड़ने, गोबर से लीपने, गोमूत्र एवं गङ्गाजल आदि पदार्थों से सींचने, भूमि के ऊपर की कुछ मिट्टी हटाने एवं गायों के वास करने से भूमि पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाती है—

सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः।

(मनुस्मृति)

गृह-निर्माण के लिये भूमि की दिशा का ज्ञान भी आवश्यक है। इसका ज्ञान ध्रुव-तारे के द्वारा या शङ्कु द्वारा करना चाहिये। शङ्कु कृतमाल, शमी, चन्दन अथवा लाल चन्दन, खदिर (कला) या तिन्दुक की लकड़ी से १२ अङ्गुल का निर्मित करना चाहिये। इसे भूमि में स्थापित कर शङ्कु के दूने सूत्र से उसके चारो ओर वृत्त खींचना चाहिये। प्रातःकाल उसकी छाया वृत्त के जिस स्थान पर पड़े, वहाँ चिह्न लगा देना चाहिये। वह भूमि की पश्चिम दिशा होगी। सायंकाल पुनः शङ्कु की जहाँ छाया पड़े, वहाँ चिह्न लगाना चाहिये। वह पूर्व दिशा होगी। पूर्व दिशा की ओर मुँह करने पर दाहिनी ओर दक्षिण दिशा एवं बायीं ओर उत्तर दिशा होगी—

वृत्ते समभूगते तु केन्द्रस्थितशङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्ध्यति मेरुदिक् च याम्या॥

(बृहद्वास्तुमाला)

दिशा का ज्ञान तारे द्वारा भी किया जा सकता है। सप्तर्षि तारों में प्रथम दो तारों की संज्ञा मार्कटिका है। शङ्कु-स्थापन के पश्चात् रात्रि में जब मार्कटिका तारे, ध्रुव एवं शङ्कु का शीर्ष एक सीध में दिखाई पड़ने लगे तब शङ्कु के दक्षिण भाग में एक दीपक रखना चाहिये। शङ्कु से दीपक की दिशा दक्षिण, ध्रुवतारे की दिशा उत्तर एवं उससे पूर्व एवं पश्चिम दिशा का निर्धारण करना चाहिये—

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा।
शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे॥

(राजवल्लभमण्डन)

दिशा का ज्ञान चुम्बक से भी किया जा सकता है—

सच्चुम्बकादेव सुशिल्पविज्ञाः
कुर्वन्ति दिग्ज्ञानमितोऽन्यथैव ।
पूर्वापरा यात्र कृता प्रकारै-
र्ज्ञेया बुधैः सा सममण्डलीया ॥ (गृहरत्नविभूषण)

शिलान्यास

शुभ मास, नक्षत्र, तिथि, वार एवं मुहूर्त आदि का विचार कर गृहपति को गृह का शिलान्यास करना चाहिये। शिलान्यास में आधारशिला प्रथमतः आग्नेय कोण में रखनी चाहिये। कुछ वास्तु-ग्रन्थों में ईशान कोण को शिलान्यास के लिए प्रशस्त माना गया है। नींव में शिला के साथ ताम्र-पात्र में मिट्टी, सोना, पञ्चरत्न, सप्तधान्य तथा सेवार आदि रखकर उसे भी स्थापित किया जाता है—

मृदिष्टकास्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुतम् ।
ताम्रपात्रस्थितं सर्वं खातमध्ये नियोजयेत् ॥ (बृहद्वास्तुमाला)

वास्तुमण्डल

गृह-निर्माण के समय वास्तु-क्षेत्र में वास्तुमण्डल का निर्माण धार्मिक अनुष्ठान के साथ ही गृह-निर्माण की योजना की पूर्व-पीठिका भी है। गृह के लिये प्रायः ६४ या ८१ पद का वास्तुमण्डल बनाया जाता है। सभी दिशाओं में वास्तुदेवों को स्थापित किया जाता है। केन्द्र में ब्रह्मा का स्थान होता है तथा उनके चारो ओर भी देवताओं को स्थान दिया जाता है। पूर्व दिशा के ईशान कोण से प्रारम्भ करते हुये देवता इस प्रकार हैं—शिखि, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश एवं आकाश। आग्नेय से दक्षिण दिशा के देवता हैं—वायु, पूषा, वितथ, गृहक्षत अथवा बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज एवं मृग। नैर्ऋत्य से प्रारम्भ कर पश्चिम के देवता इस प्रकार हैं—पितृ, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोष एवं पापयक्ष्मा। वायव्य से उत्तर के देवता हैं—रोम, नाग, मुख्य, भल्लाट, सोम, शैल, अदिति एवं दिति। कहीं-कहीं शैल के स्थान पर भुजग का उल्लेख प्राप्त होता है। केन्द्र में ब्रह्मा, ब्रह्मा के पूर्व में अर्यमा, दक्षिण में विवस्वान्, पश्चिम में मित्र एवं उत्तर में पृथिवीधर होते हैं। इनके ईशान में आप एवं आपवत्स, आग्नेय में सविता एवं सावित्र, नैर्ऋत्य में इन्द्र एवं जय तथा वायव्य में रुद्र एवं रुद्रदास होते हैं। इस वास्तुमण्डल पर वास्तुपुरुष की स्थिति होती है। ईशान कोण में वास्तु-पुरुष का शिरोभाग होता है। उसके सिर में शिखी, बायें नेत्र में दिति, दाहिने नेत्र में पर्जन्य, मुख में आप, बायें कान में अदिति तथा दाहिने कान में जयन्त का स्थान होता है। इसके पश्चात् वास्तु-पुरुष का स्कन्ध, भुजा एवं हाथ होता है। वाम स्कन्ध में भुजग अथवा शैल, दाहिने में इन्द्र, बायीं भुजा में ५ देवता—सोम, भल्लाट, मुख्य, नाग एवं रोग होते हैं। दाहिनी भुजा में सूर्य, सत्य, भृश, आकाश एवं वायु होते हैं। बायें मणिबन्ध में रुद्रदास एवं हाथ में रुद्र तथा दाहिने मणिबन्ध में पूषा एवं हाथ में सावित्र एवं सविता देवता होते हैं। वास्तुमण्डल के मध्य भाग में वास्तुपुरुष का हृदय,

पेट एवं दोनों पार्श्व होते हैं। उनके वक्ष में आपवत्स, बायें स्तन में पृथिवीधर, दाहिने स्तन में अर्यमा, हृदय में ब्रह्मा एवं पेट में मित्र तथा विवस्वान् देवता होते हैं। वाम पार्श्व में शोष तथा असुर एवं दक्षिण पार्श्व में वितथ तथा गृहक्षत होते हैं। इसके पश्चात् वास्तु-पुरुष का अधोभाग होता है। उनके वाम ऊरु में वरुण, दाहिने ऊरु में यम, बायें घुटने में पुष्प-दन्त एवं दाहिने घुटने में गन्धर्व देवता रहते हैं। बायें घुटने से नीचे सुग्रीव एवं दक्षिण में भृङ्गराज होते हैं। पैर पितृदेवता में होता है। वास्तु-पुरुष का वाम नितम्ब दौवारिक एवं दाहिना मृग हैं तथा उनके लिंग में इन्द्र एवं जय देवता होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वास्तु-मण्डल वास्तुपुरुष का विग्रह होता है। वास्तु-पुरुष का मर्म स्थान उनका सिर, मुख, हृदय, दोनों स्तन एवं लिंग हैं। अतिमर्म स्थान ज्ञात करने के लिये वास्तु-मण्डल के चारों कोणों एवं उनके पार्श्व को सूत्र द्वारा मिलाना चाहिये। इन सूत्रों का जिन-जिन स्थानों पर स्पर्श हो वहाँ-वहाँ अतिमर्म स्थल होते हैं। सूत्र-विस्तार रोग से वायु तक, पितृ से शिखी तक, वितथ से शोष तक, मुख से भृश तक, जयन्त से भृङ्ग तक एवं अदिति से सुग्रीव तक किया जाता है। वास्तु-क्षेत्र के मर्म एवं अति-मर्म स्थान पर भित्ति अथवा स्तम्भ नहीं निर्मित कराना चाहिये। विशेष रूप से मध्य में स्थित ब्रह्म-स्थान पर किसी भी प्रकार की अपवित्र अथवा जूठी सामग्री अथव पात्र नहीं रखना चाहिये तथा न ही स्तम्भ आदि का निर्माण कराना चाहिये। वास्तुमण्डल मर्म एवं अति-मर्म स्थलों को इस चित्र में स्पष्ट किया गया है—

ईशान पूर्व आग्नेय

शिखि	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	आकाश	वायु
दिति								पूषा
अदिति				अर्यमा				वितथ
भुजग				ब्र				गृहक्षत
सोम		पृथिवी धर	ब्र	ह्म	मा	विव-स्वान्		यम
भल्लाट				मा				गन्धर्व
मुख्य				मित्र				भृङ्ग
नाग								मृग
रोग	पाप यक्ष्मा	शोष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	दौवारिक	पितृ

उत्तर (बायें) — दक्षिण (दायें)

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

'वास्तुसौख्य' के अनुसार सूत्रों का तिरछे-विस्तार रोग से वायु, पितृ से शिखि, शोष से वितथ, मुख्य से भृश, जयन्त से भृङ्ग तथा अदिति से सुग्रीव तक करना चाहिये—

रोगाद् वायुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात् ।
मुख्याद् भृशं जयन्ताच्च भृङ्गमदितेश्च सुग्रीवम् ॥
तत्सम्पाता नव ये तान्यतिमर्माणि सम्प्रदिष्टानि ।

(वास्तुसौख्य)

गृहनिर्माण के उपकरण

गृह-निर्माण से पूर्व गृहकर्त्ता को ईंट, काष्ठ, मिट्टी, लोहा, वज्रलेप (आधुनिक सीमेण्ट) तथा चूना आदि का संग्रह कर लेना चाहिये। काष्ठ के प्रयोग में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि नवीन गृह में नवीन काष्ठ का ही प्रयोग किया जाय। पुराने गृह में गृहकर्त्ता पुराना या नया जैसा चाहे काष्ठ लगाये, किन्तु नये गृह में पुराने गृह में प्रयुक्त काष्ठ का प्रयोग वर्जित है—

नूतनैः नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते ।
जीर्णे च नूतनं श्रेष्ठं नो जीर्णं नूतने शुभम् ॥

× × × × × × ×

अन्यवेश्मस्थितं दारुं नैवान्यस्मिन्नियोजयेत् ।

(वास्तुसौख्य)

गृह-निर्माण में काष्ठ के लिये अप्रशस्त वृक्ष इस प्रकार हैं—

१. जिन पर पक्षियों ने अपना घोसला बना रखा है।
२. टूटे हुये एवं जले हुये वृक्ष।
३. बहुत अधिक सूखे वृक्ष।
४. देवालय या श्मशान में लगे वृक्ष।
५. दूध वाले या काँटेदार वृक्ष।
६. विकारयुक्त एवं रोग वाले वृक्ष।
७. बच, बहेड़ा, नीम एवं शमी के वृक्ष।

खगनिलयभग्नसंशुष्कदग्धदेवालयश्मशानस्थान् ।
क्षीरतरुधवबिभीतकनिम्बारणिवर्जितान् छिन्द्यात् ॥ (बृहत्संहिता)

समराङ्गणसूत्रधार (१६।५-१५) में अग्राह्य वृक्षों के साथ-साथ अन्य वृक्षों; यथा उल्लू, सर्प, मधुमक्खियों, चींटियों, मकड़ी के जालों एवं दीमक आदि से युक्त वृक्षों; बिजली एवं आँधी से नष्ट हुये एवं पशुओं से रौंदे हुये वृक्षों की वर्जना की गई है। गृह-निर्माण में ग्राह्य काष्ठ श्रीपर्णी, रोहिणी (कुटकी), शाक (सागौन), सर्ज, सरल, पतंग, लोध्र, शाल, ताल, अर्जुन, शीशम, चन्दन, अशोक, बेर, महुआ और कदम्ब के वृक्षों के होते हैं—

श्रीपर्णी रोहिणी शाकः सर्जश्च सरलाः शुभाः।
पतङ्गलोध्रशालाख्यास्तालार्जुनकशिंशपाः ॥
चन्दनाशोकबदरीकधूकाश्च कदम्बकाः।
प्रशस्ताश्च शमी निम्बो बिलवर्ज्यं गृहान्तिके ॥

(बृहद्वास्तुमाला)

गृह का मुख्य द्वार

गृह का प्रमुख प्रवेश-द्वार गृह का मुख होता है, अत: इसका विशेष महत्त्व होता है। इसकी स्थापना का सामान्य नियम यह है कि जिस दिशा में द्वार रखना हो, उसके ९ भाग करना चाहिये। भूमि भीतर मार्ग की ओर मुँह कर खड़ा होना चाहिये। दाहिनी ओर से ५ भाग एवं बायीं ओर से ३ भाग छोड़कर शेष भाग में द्वार की स्थापना करनी चाहिये—

नवभागं गृहं कृत्वा पञ्चभागं तु दक्षिणे।
त्रिभागं वामतः कृत्वा शेषं द्वारं प्रकल्पयेत् ॥

(वास्तुसौख्य)

मुख्य-द्वार के स्थापना में कुछ विचारणीय तथ्य इस प्रकार हैं—

१. आवासीय गृह के मध्य भाग में प्रमुख द्वार नहीं होना चाहिये—

गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्।

(वास्तुसौख्य)

२. प्रमुख द्वार कोणों में नहीं करना चाहिये।

३. मुख्य द्वार स्थापित करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उससे वास्तुमण्डल की शिरायें एवं वंश (वास्तुमण्डल की रेखायें) तथा वास्तुमण्डल के मर्म-स्थल न विद्ध हों, साथ ही द्वार इस प्रकार न निर्मित हो, जिससे गृह की नाली द्वार के मध्य से प्रवाहित हो—

शिरामर्माणि वंशाश्च नालमध्यं च सर्वशः।
विहाय वास्तुमध्यं च द्वाराणि विनिवेशयेत् ॥

(वास्तुसौख्य)

४. गृह के द्वार का अपने-आप उद्घाटन एवं अपने-आप बन्द होना अप्रशस्त होता है। इससे कुल का नाश सम्भव है—

उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः।

(बृहत्संहिता)

इस श्रेणी में यन्त्र-चालित द्वारों को नहीं ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि यह कार्य स्वत: होता हुआ भी यन्त्र द्वारा संचालित होता है।

५. द्वार को नियमानुसार ही बनवाना चाहिये। अधिक बड़ा द्वार राज-कुल से भय एवं छोटा द्वार चोरों से भय प्रदान करता है—

मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च।

(बृहत्संहिता)

६. द्वार की आकृति प्रशस्त होनी चाहिये। मृदङ्ग की आकृति वाला, बीच में बहुत चौड़ा, कुबड़ा द्वार, द्वार पर चौखट का बहुत बोझ होना, भीतर की ओर झुका होना, बाहर की ओर निकला होना, सही दिशा का न होना आदि द्वार के निर्माण-गत दोष हैं—

आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति।
पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय।
बाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा।

(बृहत्संहिता)

७. जिस प्रकार प्रमुख द्वार की सज्जा हो, उस प्रकार अन्य द्वारों की सज्जा नहीं होनी चाहिये। गृह के मुख्य द्वार की सजावट कलश, श्रीफल, पत्र, सुन्दर स्त्री तथा अन्य सुन्दर आकृतियों से करनी चाहिये—

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपर्द्ध्या।
घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात्॥

(बृहत्संहिता)

८. मुख्य द्वार के सम्मुख जिनदेव (जैनियों के देवता) पीठ, रुद्र एवं सूर्य की प्रतिमा का साम्मुख्य, वासुदेव का वाम भाग एवं ब्रह्मा का दाहिना भाग नहीं पड़ना चाहिये—

वर्जयेदर्हतः पृष्ठं दृष्टिं चण्डीशसूर्ययोः।
वामत्वं वासुदेवस्य दक्षिणं ब्रह्मणः पुनः॥

(वास्तुसौख्य)

९. एक द्वार के ठीक ऊपर दूसरा द्वार एवं अन्य के गृह के प्रमुख द्वार के सामने अपने गृह का मुख्य द्वार नहीं रखना चाहिये—

द्वारस्योपरि द्वारं द्वारं द्वारस्य सम्मुखम्।
न कार्यं व्ययदं यस्माद् तद् गृहं न सुखावहम्॥

(वास्तुसौख्य)

१०. प्रमुख द्वार के सम्मुख द्वार-वेध नहीं होना चाहिये। द्वार-वेध के कारण इस प्रकार हैं—राज-मार्ग, कोण, वृक्ष, स्तम्भ, कूप, कीचड़ या गन्दी नाली, देवता तथा

ब्रह्म-वेध (ब्रह्मा अथवा किसी देवतुल्य मनुष्य की प्रतिमा)। किन्तु उपर्युक्त कारण द्वार के ऊँचाई की दुगुनी भूमि छोड़ कर स्थित हों तो उनसे द्वार-वेध का दोष नहीं होता—

मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद् द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय॥

× × × × × × × ×

कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्राह्मणाऽभिमुखे॥

(बृहत्संहिता)

द्वार की दिशा

आय के अनुसार द्वार—यदि गृह की आय ध्वज हो तो पूर्व दिशा में अथवा गृहकर्त्ता की इच्छानुसार किसी भी दिशा में द्वार का निर्माण हो सकता है। सिंह आय होने पर पूर्व, दक्षिण या उत्तर दिशा में द्वार प्रशस्त होता है। गज आय होने पर पूर्व या दक्षिण दिशा में तथा वृष आय होने पर पश्चिम दिशा में द्वार स्थापित करना चाहिये—

ध्वजाये दिक्षु सर्वासु हरौ पूर्वे यमोत्तरे।
गजाये पूर्वयमयोर्वृषे द्वारं तु पश्चिमम्॥

(वास्तुमाणिक्यरत्नाकर)

इसी प्रकार वायस आय होने पर पूर्व दिशा, धूम आय होने पर दक्षिण दिशा, श्वान आय होने पर पश्चिम दिशा एवं खर आय होने पर उत्तर दिशा ग्रहण करना चाहिये।

सूर्य के अनुसार द्वार—सूर्य के कर्क, सिंह, मकर एवं कुम्भ में होने पर गृह पूर्व-मुख या पश्चिम-मुख होना चाहिये। मंगल एवं शुक्र के गृह में अर्थात् मेष एवं वृष के तथा तुला एवं वृश्चिक के सूर्य में उत्तर एवं दक्षिण में गृह का द्वार रखना चाहिये—

कर्कनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखान्यपि कुर्यात्॥

(वास्तुसौख्य)

तिथि के अनुसार गृह का द्वार—गृह का आरम्भ पूर्णिमा से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक करे तो पूर्व दिशा में गृह का मुख नहीं होना चाहिये। कृष्ण पक्ष की नवमी से चतुर्दशी के मध्य गृहारम्भ होने पर उत्तरमुख गृह नहीं बनवाना चाहिये। अमावस्या से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक गृहारम्भ करने पर पश्चिम दिशा में एवं शुक्ल पक्ष की नवमी से चतुर्दशीपर्यन्त गृहारम्भ करने पर दक्षिण दिशा में गृह का मुख्य द्वार नहीं रखना चाहिये—

पूर्णादि त्वष्टमीं यावत् पूर्वास्यं वर्जयेद् गृहम्॥
उत्तरस्यां न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम्।

अमावस्याष्टमीं यावत् पश्चिमास्ये विवर्जयेत् ॥
नवम्यादौ तथा याम्यां यावच्छुक्लचतुर्दशीम् ।

(वास्तुसौख्य)

वास्तुमण्डल में मुख्य द्वार की स्थिति

पूर्व

शिखि	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	आकाश	वायु
दिति								पूषा
अदिति								वितथ
भुजग								गृहक्षत
सोम								यम
भल्लाट								गन्धर्व
मुख्य								भृंगराज
नाग								मृग
रोग	पाप यक्ष्मा	शोष	असुर	वरुण	पुष्पदन्त	सुग्रीव	दौवारिक	पितृ

उत्तर | दक्षिण

पश्चिम

१. बायीं ओर से चौथा पद।

२. पूर्व में तीसरा, दक्षिण में छठवाँ, पश्चिम में पाँचवाँ एवं उत्तर में पाँचवाँ पद भी मतान्तर से द्वार के लिये उपयुक्त है।

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवे द्वाः सव्यतोऽङ्कोद्धृते ।
दैर्घ्ये द्वांशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासु दिक्षूदिता ॥

(वास्तुप्रबोध)

चन्द्रमा तथा नक्षत्र के अनुसार गृह-द्वार—कृत्तिका आदि ७-७ नक्षत्रों को क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में रखना चाहिये। गृह का नक्षत्र एवं चन्द्रमा द्वार के पार्श्व में रहे, इस प्रकार द्वार-स्थापन करना चाहिये। गृह एवं चन्द्रमा का नक्षत्र गृह के अग्र एवं पृष्ठ भाग में हों तो गृह एवं गृह-स्वामी दोनों नष्ट हो जाते हैं—

क्षपाकरे नैव गृहं पुरःस्थे,
कुर्याद् वसेत् तत्र न जातु कर्त्ता।

पतन्ति खन्यानि च पृष्ठसंस्थे,
यत्नेन तस्मादिदमत्र चिन्त्यम् ॥

(वास्तुसौख्य)

वर्ण के अनुसार गृह-द्वार—ब्राह्मण राशि (कर्क, मीन, वृश्चिक) वालों का गृह पूर्व-मुख, क्षत्रिय राशि (सिंह, मेष, धनु) का गृह उत्तर-मुख, वैश्य राशि (कन्या, मकर, वृष) का गृह दक्षिण-मुख एवं शूद्र राशि (मिथुन, कुम्भ, तुला) का गृह पश्चिम-मुख होना चाहिये—

द्विजराशेर्गृहद्वारं पूर्वे भूपस्य चोत्तरे ।
वैश्यराशेर्यममुखं शूद्रराशेस्तु पश्चिमे ॥

(वास्तुमाणिक्यरत्नाकर)

मत्स्यपुराण के अनुसार ब्राह्मण राशि वालों का गृह उत्तरमुख एवं क्षत्रिय राशि वालों का गृह पूर्व-मुख होना चाहिये। एक अन्य मत के अनुसार ब्राह्मण-राशि के गृहकर्त्ता सभी दिशाओं में अपना गृह-मुख रख सकते हैं।

वास्तु-पद के अनुसार द्वार-फल

वास्तु-मण्डल की चारो दिशाओं में कहीं भी गृहकर्त्ता भवन के मुख्य द्वार का निर्माण करा सकता है, किन्तु वास्तु-पदों में स्थित देवों के अनुसार उन द्वारों के परिणाम पृथक्-पृथक् कहे गये हैं। गृहस्वामी को वास्तुपद के अनुसार द्वार-फल का विचार करने के पश्चात् ही मुख्य द्वार स्थापित करना चाहिये। दिशा एवं वास्तुपद के अनुसार द्वार-फल इस प्रकार है—

पूर्व द्वार

अनलभयं स्त्रीजन्म प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम् ।
क्रोधपरता नृपत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ॥

(बृहत्संहिता)

वास्तुपद	**द्वार-फल**
शिखी	अग्निभय
पर्जन्य	कन्याओं का जन्म
जयन्त	अत्यधिक धन
इन्द्र	राजा से सम्मान
सूर्य	क्रोध
सत्य	नृपत्व की प्राप्ति
भृश	क्रूरता
आकाश	चोरी

दक्षिण द्वार

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः ।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥

(बृहत्संहिता)

वास्तुपद	द्वार-फल
वायु	कम पुत्र
पूषा	दासता
वितथ	नीचता
गृहक्षत	भोजन, पान एवं पुत्र-वृद्धि
यम	भयानकता, अशुभता
गन्धर्व	कृतघ्नता
भृङ्गराज	धनहीनता
मृग	पुत्र एवं बल का नाश

पश्चिम द्वार

सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न धनसुताप्तिः सुतार्थबलसम्पत् ।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥

(बृहत्संहिता)

वास्तुपद	द्वार-फल
पितृ	पुत्र-कष्ट
दौवारिक	शत्रु-वृद्धि
सुग्रीव	धन एवं पुत्र की अप्राप्ति
पुष्पदन्त	पुत्र एवं धन की प्राप्ति
वरुण	धन-सम्पत्ति
असुर	राजभय
शोष	धन-नाश
पापयक्ष्मा	रोग-भय

उत्तर द्वार

वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुणसम्पत् ।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ॥

(बृहत्संहिता)

वास्तुपद	द्वार-फल
रोग	वध एवं बन्धन

नाग	शत्रु-वृद्धि
मुख्य	पुत्र एवं धन का लाभ
भल्लाट	सभी प्रकार के गुण-सम्पत्ति
सोम	पुत्र एवं धन का लाभ
भुजग	पुत्र से वैर
अदिति	स्त्रियों में दोष
दिति	निर्धनता

इस प्रकार बृहत्संहिता में चारो दिशाओं के द्वार-फल वर्णित हैं। कहीं-कहीं कुछ द्वार-फलों के विषय में विद्वानों में मतभेद भी प्राप्त होते हैं।

गृह का मान

वास्तु-ग्रन्थों में गृह-निर्माण के प्रकरण में गृह की भित्ति, शाला, अलिन्द (बरामदा), द्वार, चौखट आदि का मान विस्तार से वर्णित है। यहाँ गृह-निर्माण के सामान्य माप का वर्णन किया जा रहा है—

भित्ति-प्रमाण—वराहमिहिर के अनुसार गृह के दीवार की चौड़ाई उसके सोलहवें भाग के बराबर रखी जानी चाहिये, किन्तु पक्की ईंट की दीवार के प्रसंग में यह नियम नहीं लागू होता है। काष्ठ-निर्मित भित्ति भी उपर्युक्त नियम से बाहर होती है—

व्यासात् षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः।
पक्वेष्टकाकृतानां दारुकृतानां तु न विकल्पः॥

(बृहत्संहिता)

निचली मंजिल (ग्राउण्ड फ्लोर, भूतल) में भित्ति की ऊँचाई ज्ञात करने के लिये ४ हाथ में गृह के विस्तार का १६ वाँ भाग जोड़ना चाहिये। जैसे १०८ हाथ के गृह का १६वाँ भाग ६ हाथ, १८ अंगुल होता है। यह भित्ति की चौड़ाई है। इसमें ४ हाथ जोड़ने पर पौने ग्यारह हाथ प्राप्त होता है। यही निचली मंजिल की ऊँचाई होनी चाहिये, निचली मंजिल के ऊपर बनने वाले मंजिलों की ऊँचाई क्रमशः १२ भाग कम करते जाना चाहिये। यही क्षय-क्रम है। सम्भवतः इसी से गृह की एक संज्ञा 'क्षय' भी है। भित्ति की ऊँचाई का पूर्वोक्त मान वराहमिहिर ने इस प्रकार कहा है—

विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद् गृहोच्छ्रायः।
द्वादशभागेनोनौ भूमौ भूमौ समस्तानाम्॥

(बृहत्संहिता)

शाला एवं अलिन्द का प्रमाण—किसी गृह के क्षेत्रफल में ७० जोड़ कर उसके दो भाग करना चाहिये। एक भाग में १४ का भाग देने पर शाला का प्रमाण एवं १५ का भाग देने पर अलिन्द का प्रमाण ज्ञात होता है। सेनापति एवं राजा के गृह के प्रसंग में बृहत्संहिता में उपर्युक्त नियम का उल्लेख किया गया है—

सेनापतिनृपतीनां सप्ततिसहिते द्विधाकृते व्यासे ।
शाला चतुर्दशहृते पञ्चत्रिंशद् धृतेऽलिन्दः ॥

(बृहत्संहिता)

वीथिका—गृह के बाहर बनने वाली वीथिका (गली, गलियारा) शाला का अंग होती हुई भी शाला से पृथक् होती है । वीथिका का मान शाला के तृतीय भाग के बराबर होना चाहिये—

शाला त्रिभागतुल्या कर्तव्या वीथिका बहिर्भवनात् ।

(बृहत्संहिता)

मत्स्यपुराण के अनुसार जिस भवन के आगे वीथिका बनी हो, उसे 'सोष्णीष वास्तु', जिसके पार्श्व में वीथिका हो उसे 'सावष्टम्भ वास्तु', जिस गृह के पीछे वीथिका हो उसे 'सायाश्रय वास्तु' एवं जिसके चारो ओर वीथिका निर्मित हो उसे 'सुस्थित वास्तु' कहते हैं ।

द्वार-प्रमाण—गृह के विस्तार के ग्यारहवें भाग में ७० जोड़ कर जो संख्या प्राप्त हो उतनी प्रमुख द्वार की ऊँचाई रखनी चाहिये तथा द्वार की चौड़ाई द्वार की ऊँचाई की आधी होनी चाहिये—

एकादशभागयुतः ससप्ततिर्नृपबलेशयोर्व्यासः ।
उच्छ्रायोऽङ्गुलतुल्यो द्वारस्यार्धेन विष्कम्भः ॥

(बृहत्संहिता)

द्वार का यह मान राजा एवं राजपुरुषों के भवन के द्वार-हेतु है । सामान्य गृह के द्वार का मान प्राप्त करने के लिये गृह की चौड़ाई के पाँचवें भाग में १८ अंगुल जोड़कर जो संख्या प्राप्त हो, उसमें उसका अष्टमांश मिलाकर द्वार का विस्तार रखना चाहिये तथा द्वार की ऊँचाई उसके विस्तार का तीन गुना रखना चाहिये । बृहत्संहिता के अनुसार—

विप्रादीनां व्यासात् पञ्चांशोऽष्टादशाङ्गुलसमेतः ।
साष्टांशो विष्कम्भो द्वारस्य त्रिगुण उच्छ्रायः ॥

कक्षों के द्वार के सन्दर्भ में एक नियम 'समराङ्गणसूत्रधार' में यह भी प्राप्त होता है कि भित्ति की ऊँचाई के तीन भाग करने चाहिये । ऊपर से तीसरा भाग छोड़ कर द्वार की ऊँचाई रखनी चाहिये एवं द्वार की ऊँचाई की आधी द्वार की चौड़ाई रखनी चाहिये ।

चौखट का प्रमाण—द्वार के दोनों शाखाओं (चौखट के दायें-बायें की लकड़ी) की मोटाई उतने अंगुल होनी चाहिये, जितने हाथ द्वार की ऊँचाई हो । चौखट के ऊपर एवं नीचे की लकड़ी शाखाओं से डेढ़ गुनी मोटी होनी चाहिये—

उच्छ्रायहस्तसंख्यापरिमाणान्यङ्गुलानि बाहुल्यम् ।
शाखाद्वयेऽपि कार्यं सार्धं तत् स्यादुदुम्बरयोः ॥

(बृहत्संहिता)

स्तम्भ—स्तम्भ भवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। यह कई आकृतियों में निर्मित होता है। चार कोणों वाला स्तम्भ रुचक, आठ कोणों वाला वज्र, सोलह कोणों वाला द्विवज्र, बत्तीस कोणों वाला प्रलीनक एवं वृत्ताकार स्तम्भ वृत्त कहलाता है—

समचतुरस्रो रुचको वज्रोऽष्टास्त्रिर्द्विवज्रको द्विगुणः।
द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्तः॥

(बृहत्संहिता)

निर्माण करते समय स्तम्भ के ९ भाग करने चाहिये। नीचे के प्रथम भाग का नाम 'वहन', दूसरे का 'घट', तीसरे का 'पद्म', चौथे का 'उत्तरोष्ठ', पाँचवें का 'भारतुला', छठवें का 'तुला' तथा सातवें का 'उपतुला' होता है। इन सबका वर्णन बृहत्संहिता में प्राप्त होता है।

गवाक्ष—गृह का गवाक्ष (खिड़की, झरोखा) दक्षिण एवं पश्चिम में बनवाना चाहिये—

पश्चिमे दक्षिणे चैव गवाक्षो मन्दिरस्य च।

(वास्तुसौख्य)

गृह की आकृति एवं चन्द्रवेध

भूमि की आकृति के सदृश गृह की प्रशस्त आकृति आयताकार, चौकोर, भद्रासन अथवा वृत्ताकार होती है। इसके अतिरिक्त शेष आकृतियाँ गृहनिर्माण में वर्जित होती हैं। प्रशस्त गृह में सूर्य-वेध एवं चन्द्र-वेध भी विचारणीय तथ्य है। पूर्व-पश्चिम दीर्घ भवन सूर्य-वेधी तथा उत्तर-दक्षिण गृह चन्द्रवेधी होते हैं। चन्द्र-वेध से युक्त गृहों को आवास की दृष्टि से उत्तम माना गया है—

पूर्वपश्चिमयोर्दैर्घ्यं सूर्यवेधं प्रकथ्यते।
दक्षिणोत्तरयोर्दैर्घ्यं चन्द्रवेधं प्रकथ्यते॥
चन्द्रवेधं गृहं कार्यं सूर्यवेधं जलाशयम्।
उभयोः वाटिकायां च वेधं सौख्यफलप्रदम्॥

गृह के प्रकार

इस प्रकरण में एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल एवं चतुश्शाल गृहों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है। वास्तुशास्त्र में इन्हीं ४ प्रकार के शाल-गृहों के योग से निर्मित गृहों के अन्य प्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है।

एकशाल गृह

एक शाल या कक्ष से निर्मित गृह को एकशाल गृह कहा जाता है। बरामदे की स्थिति के अनुसार इसके १६ भेद बनते हैं। यह अलिन्द या बरामदा गृह के चारो ओर, तीन ओर, दो ओर या एक ओर हो सकता है। यह भी सम्भव है कि गृह के किसी ओर अलिन्द न हो। इनका परिचय इस प्रकार है—

ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम्।
सुवक्त्रं दुर्मुखं क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयम्।
आक्रन्दं विपुलं शश्वत् षोडशं विजयाभिधम्॥

(वास्तुसौख्य)

ध्रुव—इस गृह के किसी भी दिशा में अलिन्द नहीं होता है। यह गृह प्रशस्त होता है—

ध्रुवसंज्ञे गृहं त्वाद्यं धनधान्यसुखप्रदम्। (वास्तुसौख्य)

धान्य—पूर्व दिशा में एक अलिन्द से युक्त यह गृह आवास के लिये प्रशस्त होता है—

धान्यं धान्यप्रदं नृणाम्। (वास्तुसौख्य)

जय—इस गृह में दक्षिण दिशा में एक अलिन्द होता है। यह गृहस्वामी को विजय प्रदान करता है—

जयं स्याद्विजयप्रदम्। (वास्तुसौख्य)

नन्द—इस गृह के पूर्व एवं दक्षिण दिशा में एक-एक अलिन्द होता है। इस गृह में स्त्री की हानि होती है: अत: यह गृहस्थ के लिये प्रशस्त नहीं होता—

नन्दं स्त्रीहानिर्नूनम्। (वास्तुसौख्य)

खर—पश्चिम दिशा में एक अलिन्द वाला यह गृह गृहस्वामी की सम्पत्ति का विनाश करता है, अत: यह गृह आवास के लिये शुभ नहीं है—

खरं सम्पद्विनाशनम्। (वास्तुसौख्य)

कान्त—इस गृह में पूर्व एवं पश्चिम दिशा में एक-एक अलिन्द होता है। इस गृह में गृहकर्त्ता को पुत्र-पौत्र की प्राप्ति होती है—

पुत्रपौत्रप्रदं कान्तम्। (वास्तुसौख्य)

मनोरम—दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में एक-एक अलिन्दयुक्त यह गृह लक्ष्मी प्रदान करता है—

श्रीप्रदं स्यान्मनोरमम्। (वास्तुसौख्य)

सुवक्त्र—इस गृह को तीन अलिन्दों से युक्त कहा गया है। इसमें पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम दिशा में एक-एक अलिन्द होते हैं। सुवक्त्र गृह भोग-सामग्रियों को प्रदान करता है—

सुवक्त्रं भोगदं नूनम्। (वास्तुसौख्य)

दुर्मुख—उत्तर दिशा में एक अलिन्द वाला यह गृह गृहकर्त्ता को कष्ट प्रदान करता है—

दुर्मुखं विसुखप्रदम् । (वास्तुसौख्य)

क्रूर—इस गृह में पूर्व एवं उत्तर में एक-एक अलिन्द होता है। यह गृहस्वामी को दुःख प्रदान करता है—

सर्वदुःखप्रदं क्रूरम् । (गृहरत्नविभूषण)

विपक्ष—दक्षिण एवं उत्तर दिशा में एक-एक अलिन्द वाला गृह गृहकर्त्ता को शत्रु-भय प्रदान करता है—

विपक्षं शत्रुभीतिदम् । (गृहरत्नविभूषण)

धनद—इस गृह की तीन दिशाओं पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर में एक-एक अलिन्द होता है। यह अपने नाम के अनुरूप गृहस्वामी को धन प्रदान करता है—

धनदं धनदं गेहम् । (वास्तुसौख्य)

क्षय—इस गृह के पश्चिम एवं उत्तर में एक-एक अलिन्द होता है। यह गृहस्वामी को क्षय प्रदान करता है—

क्षयं सर्वक्षयप्रदम् । (वास्तुसौख्य)

आक्रन्द—पूर्व, पश्चिम एवं उत्तर में एक-एक अलिन्द से युक्त गृह शोककारक कहा गया है—

आक्रन्दं शोकजननम् । (वास्तुसौख्य)

विपुल—दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा में एक-एक अलिन्द वाला यह गृह धन एवं यश प्रदान करता है—

विपुलं श्रीयशप्रदम् । (वास्तुसौख्य)

विजय—इस गृह में चार अलिन्द होते हैं। सभी दिशाओं में एक-एक अलिन्द होता है। यह गृहस्वामी को धन एवं विजय प्रदान करता है—

विजयं नाम सदनं धनदं विजयप्रदम् । (वास्तुसौख्य)

इस प्रकार पूर्वोक्त सोलह गृहों में ध्रुव, धान्य, जय, कान्त, मनोरम, सुवक्त्र, धनद, विपुल एवं विजय गृह प्रशस्त होते हैं—

ध्रुवं धान्यं जयं कान्तं मनोरमं सुवक्त्रकम् ।
धनदं विपुलं गेहं विजयाख्यं शुभप्रदम् ॥

(गृहरत्नविभूषण में पाद-टिप्पणी)

इन्हीं भवनों (षोडश गृह) के अन्य भेद अनेक तल होने एवं गृह के सामने मण्डप (पोर्च) बनने के कारण बनते हैं। वास्तु-शास्त्र में एक-शाल गृह के १०८ प्रकार वर्णित हैं।

द्विशाल गृह

यह गृह दो कक्षों के संयोग से निर्मित होता है। कक्षों की स्थिति के अनुसार इनका नामकरण इस प्रकार किया गया है—

सिद्धार्थ—इस द्विशाल गृह में एक कक्ष पश्चिम एवं एक कक्ष दक्षिण दिशा में होता है—

सिद्धार्थमपरयाम्ये । (बृहत्संहिता)

यह गृह गृहस्वामी को अर्थ प्रदान करता है, इसलिये यह प्रशस्त है—

सिद्धार्थेऽर्थावाप्तिः । (बृहत्संहिता)

यमसूर्य—इस द्विशाल गृह में एक कक्ष पश्चिम एवं दूसरा उत्तर दिशा में होता है—

यमसूर्यं पश्चिमोत्तरे शाले । (बृहत्संहिता)

इस गृह का फल गृहस्वामी की मृत्यु है, अतः यह गृह शुभ नहीं है—

यमसूर्ये गृहपतेर्मृत्युः । (बृहत्संहिता)

दण्ड—इसमें एक कक्ष उत्तर एवं दूसरा पूर्व में होता है—

दण्डाख्यमुदक्पूर्वे । (बृहत्संहिता)

इस गृह का फल दण्ड एवं वध है, अतः यह गृह भी आवासयोग्य नहीं है—

दण्डवधो दण्डाख्ये । (बृहत्संहिता)

वात—इस गृह में पूर्व तथा दक्षिण दिशा में एक-एक कक्ष होते हैं—

वाताख्यं प्राग्युता याम्या । (बृहत्संहिता)

इस गृह का परिणाम कलह एवं उद्वेग है, अतः यह गृह-स्वामी के लिये प्रशस्त नहीं है—

कलहोद्वेगः सदैव वाताख्ये । (बृहत्संहिता)

इन चारो द्विशाल गृहों में दो कक्ष एक-दूसरे के बगल में होते हैं। इन कक्षों की स्थिति एक-दूसरे के आमने-सामने भी सम्भव है। अगले दो भेद इसी स्थिति पर आधारित हैं—

गृहचुल्ली—इस गृह में एक कक्ष पूर्व दिशा में एवं दूसरा पश्चिम दिशा में होता है—

पूर्वापरे तु शाले गृहचुल्ली । (बृहत्संहिता)

इस गृह में धन का नाश होता है, अतः इस गृह को भी प्रशस्त नहीं माना गया है—

वित्तविनाशश्चुल्ल्याम् । (बृहत्संहिता)

काच—इसमें एक कक्ष दक्षिण एवं दूसरा उत्तर में होता है—

दक्षिणोत्तरे काचम् । (बृहत्संहिता)

यह गृह भी प्रशस्त नहीं है, क्योंकि इस गृह में ज्ञाति-बान्धवों से विरोध प्राप्त होता है—

ज्ञातिविरोध: स्मृत: काचे । (बृहत्संहिता)

उपर्युक्त द्विशाल गृहों में सिद्धार्थ को छोड़ कर सभी गृह त्याज्य होते हैं। उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त एक ही दिशा में दो कक्षों का निर्माण भी सम्भव है। इस प्रकार इनके चार और भेद बनते हैं। इनके साथ अलिन्द, मण्डप तथा अलिन्द के साथ मण्डप तथा कई तलों के कारण अनेक भेद बनते हैं। इन भेदों का 'राजवल्लभमण्डन' ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। 'वास्तुसौख्य' में इनके ५२ भेदों की चर्चा की कई है—

द्विपञ्चाशद् द्विशालानाम् । (वास्तुसौख्य)

त्रिशाल गृह

तीन कक्षों से निर्मित भवन को त्रिशाल गृह कहते हैं। कक्षों की स्थिति के अनुसार त्रिशाल गृह के भेद इस प्रकार वर्णित हैं—

हिरण्यनाभ—इस गृह में उत्तर दिशा में कक्ष नहीं होता तथा यह गृह आवास की दृष्टि से प्रशस्त होता है—

उत्तरशालाहीनं हिरण्यनाभं त्रिशालकं धन्यम् । (बृहत्संहिता)

सुक्षेत्र—इस गृह में पूर्व दिशा में कक्ष की स्थिति नहीं होती है। यह गृह गृहस्वामी को वृद्धि प्रदान करता है—

प्राक्शालया वियुक्तं सुक्षेत्रं वृद्धिदं वास्तुम् । (बृहत्संहिता)

चुल्ली—इस गृह में दक्षिण दिशा में कक्ष नहीं होता है। यह गृह धन की हानि करता है, अत: यह प्रशस्त नहीं है—

याम्याहीनं चुल्ली त्रिशालकं वित्तनाशकरमेतत् । (बृहत्संहिता)

पक्षघ्न—पश्चिम दिशा में कक्ष-विहीन यह गृह पुत्र-नाश एवं वैर का कारण बनता है। अत: यह त्याज्य है—

पक्षघ्नमपरया वर्जितं सुतध्वंसवैरकरम् । (बृहत्संहिता)

इस प्रकार उपर्युक्त भेदों में हिरण्यनाभ एवं सुक्षेत्र आवास की दृष्टि से प्रशस्त तथा चुल्ली एवं पक्षघ्न अप्रशस्त हैं। इनमें भी अलिन्द, मण्डप एवं तल आदि की दृष्टि से अनेक भेद बनते हैं।

चतुश्शाल गृह

इस गृह में चार कक्ष होते हैं। अलिन्द एवं द्वार की दृष्टि से अनेक भेद इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

सर्वतोभद्र—इस चतुश्शाल गृह में चारो ओर बरामदा एवं सभी दिशाओं में द्वार होते हैं। यह भवन राजाओं एवं देवों के लिये अधिक प्रशस्त है—

अप्रतिषिद्धालिन्दं समन्ततो वास्तु सर्वतोभद्रम्।
नृपविबुधसमूहानां कार्यं द्वारैश्चतुर्भिरपि॥

(बृहत्संहिता)

नन्द्यावर्त—पश्चिम दिशा को छोड़ कर अन्य दिशाओं में द्वार एवं अलिन्द हों तो उस चतुश्शाल गृह को नन्द्यावर्त कहते हैं। यह गृह प्रशस्त होता है—

नन्द्यावर्तमलिन्दैः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तगतैः।
द्वारं पश्चिममस्मिन् विहाय शेषाणि कार्याणि॥

(बृहत्संहिता)

वर्धमान—इस गृह में दक्षिण दिशा को छोड़कर शेष दिशाओं में अलिन्द एवं द्वार होते हैं। यह गृहकर्त्ता के लिये शुभ है—

द्वारालिन्दोऽन्तगतः प्रदक्षिणोऽन्यः शुभस्ततश्चान्यः।
तस्मिंश्च वर्द्धमाने द्वारं तु न दक्षिणं कार्यम्॥

(बृहत्संहिता)

स्वस्तिक—इस गृह में द्वार केवल पूर्व दिशा में होता है तथा शेष दिशाओं में अलिन्द होते हैं। यह गृह भी प्रशस्त होता है—

अपरोऽन्तगतोऽलिन्दः प्रागन्तगतौ तदुत्थितौ चान्यौ।
तदवधिविधृतश्चान्यः प्राग्द्वारं स्वस्तिकं शुभदम्॥

(बृहत्संहिता)

रुचक—इस गृह में उत्तर में अलिन्द एवं द्वार नहीं होता है। शेष दिशाओं में द्वार तथा अलिन्द होते हैं। यह गृह भी आवास-योग्य होता है—

प्राक्पश्चिमावलिन्दावन्तगतौ तदवधिस्थितौशेषौ।
रुचके द्वारं न शुभदमुत्तरतोऽन्यानि शस्तानि॥

(बृहत्संहिता)

इन चारो गृहों में नन्द्यावर्त एवं वर्धमान सभी के लिये तथा रुचक एवं स्वस्तिक राजाओं के लिये अधिक प्रशस्त कहा गया है—

श्रेष्ठं नन्द्यावर्तं सर्वेषां वर्धमानसंज्ञं च।
स्वस्तिकरुचके मध्ये शेषं शुभदं नृपादीनाम्॥

(बृहत्संहिता)

षोडश शालागृह

उपर्युक्त कक्षों के संयोग से षोडश शालगृह का निर्माण होता है। यह अत्यन्त

समृद्ध (राजा आदि) गृहस्थों के लिये है, किन्तु किस दिशा के कक्ष का किस कार्य में उपयोग किया जाय, इसका निर्देश सभी के लिये लाभप्रद है। इनका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजेश्च धान्यभाण्डारदैवतगृहाणि तु पूर्वतः स्युः।
तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्याभ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम॥

(मुहूर्तचिन्तामणि)

पूर्व दिशा के कक्ष

सर्वधाम कक्ष—यह कक्ष पूर्व दिशा का प्रथम कक्ष है। ईशान कोण में स्थित पूजा-गृह के पश्चात् इसकी स्थिति कही गई है। इस कक्ष में सभी प्रकार के वस्तुओं को रखा जा सकता है। अतः यह संग्रहकक्ष है।

स्नान-गृह—इस कक्ष की स्थिति पूर्व दिशा में होती है।

मथन-गृह—स्नान-गृह के दाहिनी ओर इस कक्ष की स्थिति कही गई है। यह कक्ष दही आदि मथने के लिये प्रयुक्त होना चाहिये। यदि इस कक्ष की अलग से आवश्यकता न हो तो इसे रसोई कक्ष से मिलाया जा सकता है।

रसोई—इस शाला की स्थिति पूर्व तथा दक्षिण के कोने में होती है। यहाँ भोजन पकाने का कार्य होता है।

दक्षिण दिशा के कक्ष

आज्य गृह—घी रखने के लिये रसोई घर के बगल में दक्षिण दिशा में आज्य-गृह की स्थिति कही गई है। 'समराङ्गणसूत्रधार' में राजभवन के प्रसंग में यहाँ भोजन-कक्ष की चर्चा प्राप्त होती है। 'राजवल्लभमण्डन' में भी इस मत की पुष्टि की गई है—

पूषाश्रिते भोजनमन्दिरं च महानसं वह्निदिशाविभागे।

अतः आज्य गृह की अलग से आवश्यकता न हो तो इसे भोजन करने का स्थान बनाया जा सकता है।

शयनकक्ष—आज्य गृह के पार्श्व में एवं दक्षिण दिशा के मध्य में शयन-कक्ष होना चाहिये। ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है कि गृहस्वामी की इच्छानुसार कहीं भी शयनकक्ष बनाया जा सकता है—

गेहाधीशयदृच्छया च शयनं सर्वासु भूमीषु च।

(राजवल्लभमण्डन)

पुरीषकक्ष (शौचालय)—शयन गृह के पार्श्व में शौचालय का स्थान कहा गया है।

शस्त्रागार—प्राचीन काल में सामन्त आदि समृद्ध गृहस्थों को पृथक् रूप से

शस्त्रागार की आवश्यकता होती थी। अतः नैर्ऋत्य कोण में शस्त्र रखने का कक्ष कहा गया है। शस्त्र रखने की आवश्यकता न हो तो इस कक्ष को इन्धन कक्ष बनाया जा सकता है। अथवा 'मानसार' के अनुसार यहाँ सूतिकामण्डप (प्रसूति-गृह) हो सकता है—

वायव्ये नैर्ऋते वापि सूतिकामण्डपं भवेत्। (मानसार)

पश्चिम दिशा के कक्ष

विद्याभ्यास कक्ष—पश्चिम दिशा का यह प्रथम कक्ष है। यहाँ बच्चों के पढ़ने का स्थान होना चाहिये।

भोजन कक्ष—पश्चिम दिशा के मध्य में स्थित कक्ष को भोजन-कक्ष कहा गया है।

रोदन कक्ष—भोजन कक्ष के दाहिने भाग में रोदन कक्ष (कोपभवन) की स्थिति कही गई है। सम्भवतः इस कक्ष की आवश्यकता उस परिस्थिति में पड़ती थी, जब समृद्ध गृहस्थ एक से अधिक विवाह करते थे। असन्तुष्ट पत्नी इस कक्ष का आश्रय लेकर गृहस्वामी से अपना विरोध प्रकट करती थी। वर्तमान समय में इसकी आवश्यकता नहीं है, अतः इसे अगले कक्ष से जोड़ा जा सकता है। 'समराङ्गणसूत्रधार' के अनुसार यहाँ यन्त्र एवं आयुध आदि रखा जा सकता है—

....शोषे आयुधमन्दिरम्।

× × × × × × ×

उलूखलशिलायन्त्रभवनं पापयक्ष्मणि।

धान्य कक्ष—यह गृह का अन्न-भण्डार कक्ष है। इस कक्ष की स्थिति पश्चिम एवं उत्तर के कोण में होती है।

उत्तर दिशा के कक्ष

रतिगृह—यह गृह धान्य-कक्ष के पार्श्व में उत्तर दिशा में होना चाहिये। यह कक्ष गृह-स्वामी का आमोद एवं उत्सवस्थल है। नव-विवाहित दम्पति के लिये भी यह गृह उपयुक्त है।

भण्डारकक्ष—उत्तर दिशा के मध्य में भण्डार-कक्ष की स्थिति कही गई है। इस कक्ष में धन, आभूषण, वस्त्र एवं पात्र आदि रखना चाहिये—

सोमे च मुख्यके वापि रत्नहेमादिकालयम्। (मानसार)

औषधकक्ष—परिवार-जनों के प्रयोग में आने वाली दवाओं को इस कक्ष में रखना चाहिये।

पूजाकक्ष—पूजा-गृह की स्थिति उत्तर-पूर्व कोण में होनी चाहिये।

इस प्रकार वास्तुग्रन्थों में १६ कक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। गृह-व्यवस्था में इनसे अतिरिक्त व्यवस्थाओं पर भी विचार किया जाता है।

गृह की अन्य व्यवस्थायें

जल

जल-निकास व्यवस्था—गृह में प्रयुक्त जल को बाहर निकालने की दिशा पूर्व, उत्तर-पूर्व, उत्तर, उत्तर-पश्चिम या पश्चिम प्रशस्त कही गई है। शेष दिशायें अप्रशस्त होती हैं। दिशाओं के फल इस प्रकार हैं—

पूर्व → शुभ
आग्नेय → अशुभ, धनक्षय
दक्षिण → दुःख, प्राणसन्देह
नैर्ऋत्य → पुत्र-हानि, प्राणघातक
पश्चिम (१) सम (वास्तुमणिक्यरत्नाकर-मत)
(२) पुत्र-नाश (वास्तुप्रबोध-मत)
वायव्य → शुभ, सुख
उत्तर → वृद्धिदायक, राजसम्मान
ईशान → पुत्र-प्रदाता, सुख-सम्पत्ति

इस मत की पुष्टि 'वास्तुमणिक्यरत्नाकर' में प्राप्त होती है—

गृहाद् वारिनिस्सारणार्थं प्रकुर्याद्
बिलं पूर्वकाष्ठादिके तत्फलञ्च।
शुभं चाशुभं दुःखदं पुत्रहानिः
समं शोभनं वृद्धिदं पुत्रदं च॥

'वास्तुप्रबोध' में पश्चिम दिशा को छोड़ कर शेष दिशाओं के प्राशस्त्य एवं अप्राशस्त्य के विषय में मत समान है, यद्यपि फल-कथन में भेद है—

पूर्वे वहति शुभं किञ्चिदग्निकोणे धनक्षयम्।
दक्षिणे प्राणसन्देहो नैर्ऋते प्राणघातकः।
पश्चिमे पुत्रनाशाय वायव्ये सुखमेव च।
उत्तरे राजसम्मानं ईशाने सुखसम्पदः॥

(वास्तुप्रबोध)

जलसंग्रह-व्यवस्था—गृह-कार्यों के लिये जल रखने की आवश्यकता होती है। प्राचीन काल में इसके लिये कूप का प्रयोग होता था। आधुनिक काल में नल, टंकी अथवा जल-संग्रह के अन्य साधनों का प्रयोग होता है। गृह में जल की व्यवस्था के लिये पूर्व, पूर्वोत्तर, उत्तर एवं पश्चिम प्रशस्त तथा शेष दिशायें अप्रशस्त कही गई हैं। यहाँ जलाशय का दिशा-निर्धारण कूप के माध्यम से किया गया है—

पूर्व → ऐश्वर्य-वृद्धि, कोश-वृद्धि

आग्नेय	→	पुत्र-हानि, धनहर
दक्षिण	→	स्त्री-हानि
नैर्ऋत्य	→	मृत्यु
पश्चिम	→	सम्पत्ति-लाभ
वायव्य	→	शत्रु-पीड़ा
उत्तर	→	सुख
ईशान	→	पुष्टि
गृह-मध्य	→	अर्थ-नाश

वास्तु-ग्रन्थों में इसकी पुष्टि इस प्रकार की गई है—

कूपे गेहस्य मध्ये सकलधनहरः ईशकोणादितस्तु
पुष्टिं कोशस्य वृद्धिस्त्वतनुधनहरः स्त्रीविनाशो मृतिश्च ।
सम्पत्पीडारिवर्गादमितसुखकरश्चाथ बाह्ये विचारः
वायव्ये स्त्रीविनाशोऽस्त्रपदिशि सुतहा वह्निभीतिस्तु वह्नौ ॥

(वास्तुमाणिक्यरत्नाकर)

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥

(वास्तुप्रबोध)

आँगन

गृह के सभी कक्षों का केन्द्र-स्थल गृह का आँगन होता है। गृह के आँगन का माप इस प्रकार रखना चाहिये, जिससे उसकी लम्बाई एवं चौड़ाई को जोड़कर ९ का भाग देने पर १,२,५ एवं ९ (कतिपय विद्वानों के मत में शून्य को एक मानने पर) शेष बचे। शेष संख्याओं के अनुसार आँगन का फल इस प्रकार होता है—

शेष संख्या	फल
१	दानी
२	विद्वान्
३	महाभीरू
४	क्रोधी
५	राजा
६	दानव
७	नपुंसक
८	चोर, डाकू
९	धनवान्

वास्तु ग्रन्थों में उद्धरण इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

व्यामविस्तारयोरैक्ये नवभिर्भागमाहरेत्।
अजिरस्य तु शेषेण फलं वाच्यं शुभाशुभम्।
दानी विज्ञो महाभीरुः क्रोधी भूपतिदानवौ।
क्लीबो दस्युश्च धनवान् फलं नामसमं स्मृतम्॥

(वास्तुमाणिक्यरत्नाकर)

दीर्घविस्तारसङ्ख्यैक्यं चन्द्रैश्च गुणितं तथा।
नवभिस्तु हरेद् भागं शेषमजिरमुच्यते॥
दाता विचक्षणो भीरु कलहो नृपदानवौ।
क्लीबश्चौरो धमी चेति नामतुल्यफलं स्मृतम्॥

(गृहरत्नविभूषण)

सीढ़ी

गृह के छत पर या ऊपर की मंजिल पर जाने के लिये सीढ़ी की आवश्यकता होती है। यह स्थायी या हटाई जा सकने वाली दोनों प्रकार की होती है। वास्तुग्रन्थों में चल एवं अचल दोनों प्रकार की सीढ़ियों का उल्लेख प्राप्त होता है। सीढ़ी का निर्माण नीचे से ऊपर की ओर होता है। सीढ़ी के ऊपर का द्वार पूर्व या दक्षिण में प्रशस्त होता है। सीढ़ी का निर्माण गृह के पश्चिम या उत्तर दिशा में होना चाहिये एवं सीढ़ी यदि घुमावदार हो तो उसका दक्षिणावर्त होना उत्तम होता है। सीढ़ी का ऊपरी द्वार नीचे के द्वार से १२ भाग कम होना चाहिये—

भूम्यारोहणमूर्ध्वतस्तदुपरि प्राग्दक्षिणं शस्यते।
द्वारं तूर्ध्वभवं च भूमिरपरा ह्रस्वार्कभागैः क्रमात्।
प्रासादे च मठे नरेन्द्रभवने शैलः शुभो नो गृहे
तस्मिन् भित्तिसु बाह्यकासु शुभदः प्राग्भूमिकुम्भ्यां तथा॥

(राजवल्लभमण्डन)

गृह का छाद्य

विना छाजन अथवा छत के गृह का स्वरूप पूर्ण नहीं होता है। गृह का छाद्य आगे निकला हुआ होना चाहिये। गृह की ऊँचाई से आधा, चतुर्थांश अथवा पञ्चमांश निकला छाद्य प्रशस्त होता है। छाद्य की आकृति काक-पक्ष, कुमुदपुष्प, सूप या मोरपक्ष के समान, प्रालम्ब (सीधी) अथवा करालक (पटरे की) हो सकती है—

उच्छ्रायार्धविनिर्गतं शरयुगांशेनाधिकं शस्यते
छाद्यं पट्टसमानकं सुखकरं नाशाय निम्नोन्नतम्।
तत्काकस्य च पक्षवच्च कुमुदाभं सौर्पकालापकम्
प्रालम्बं च करालकं हि विबुधैः प्रोक्तं च तत्षड्विधम्॥

(राजवल्लभमण्डन)

कूड़ा-स्थान

गृह-कार्यों से कूड़ा-करकट भी निकलता है। इन्हें गृह के नैर्ऋत्य कोण में रखना चाहिये।

गो-शाला—गायों को रखने के लिये उत्तर दिशा में भल्लाट वास्तु-पद प्रशस्त कहा गया है—

गवां स्थानं तथा क्षीरगृहं भल्लाटनामनि।

(समराङ्गणसूत्रधार)

गायों को रखने के लिये ईशान कोण भी प्रशस्त होता है—

ईशे तु धेनुशालाश्च। (मानसार)

यान-शाला—'मानसार' के अनुसार वाहन रखने का प्रशस्त स्थान 'भृश' वास्तु पद अर्थात् पूर्व एवं आग्नेय कोण के मध्य का स्थान है—

भृशे यानालयं कुर्यात्। (मानसार)

गृह के वायव्य कोण में भी वाहन रखे जा सकते हैं; क्योंकि वायव्य कोण गतिशीलता एवं चञ्चलता की दिशा है।

गृह के लिये प्रशस्त चित्र

गृह की सज्जा के लिये विभिन्न प्रकार के चित्रों का प्रयोग किया जाता है। सजावट के लिये प्रयुक्त अंकनों में कुछ प्रशस्त तथा कुछ निषिद्ध होते हैं। वास्तु-ग्रन्थों में इनका भी वर्णन प्राप्त होता है।

निषिद्ध अंकन—गृह में सूअर, बाघ, सियार, सर्प, गीध, उल्लू, कबूतर, कौआ, बाज, गोह, बगुला आदि अशुभ पशु-पक्षियों का सजावट की दृष्टि से अंकन अशुभ होता है—

वाराहशार्दूलशिवापृदाकवो गृद्ध्राभिधोलूककपोतवायसाः।
सश्येनगोधादिवकादिपत्रिणो विचित्रता नो शरणे शुभावहा॥

(बृहद्वास्तुमाला)

कुछ अंकन ऐसे भी हैं, जो देवालय के लिये प्रशस्त होते हैं; किन्तु गृहस्थ के गृह में वर्जित हैं। इनमें आठ कोने के खम्भे, गोल खम्भे, भद्रसहित एवं अलंकृत खम्भे, खम्भे पर पल्लव-निर्माण, खम्भे के शीर्ष भाग में कुमार, किन्नर या पत्र का अंकन आदि आते हैं—

स्तम्भोऽष्टास्रसुवृत्तभद्रसहितो रूपेण चालङ्कृतो
युक्तः पल्लवकैस्तथाभरणकं यत्पल्लवेनावृतम्।

कुम्भी भद्रयुता कुमारसहितं शीर्षं तथा किन्नराः ।
पत्रं चेति गृहे न शोभनमिदं प्रासादके शस्यते ॥

(राजवल्लभमण्डन)

प्रशस्त अंकन—प्रधान द्वार पर कलश, फल (नारियल), पत्र एवं प्रमथ (कहीं-कहीं पाठभेद में 'प्रमदा' = स्त्री भी प्राप्त होता है) आदि मांगलिक चिह्नों का अंकन करना चाहिये—

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपर्द्ध्या ।
घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥

(बृहत्संहिता)

वृक्षारोपण

आवास को मंगलमय, सुन्दर एवं सुखद बनाने के लिये तथा आस-पास के पर्यावरण की शुद्धि के लिये गृह के चारो ओर वृक्षारोपण का वर्णन सभी वास्तु-ग्रन्थों में प्राप्त होता है ।

वृक्षारोपण के प्रसंग में प्रथमत: यह ध्यान रखना चाहिये कि गृह के मध्य भाग (आँगन) में तुलसी को छोड़कर अन्य कोई वृक्ष, चाहे वह सोने का ही क्यों न हो; नहीं लगाना चाहिये—

यदि स्वर्णमयं वृक्षं गृहमध्ये न रोपयेत् ।
अजिरे तुलसीवृक्षं रोपयेदघनाशनम् ॥

(वास्तुप्रबोध)

बड़े वृक्षों को गृह के बाहर लगाना चाहिये । गृह के दक्षिण में गूलर, पश्चिम में पीपल, उत्तर में प्लक्ष (पाकड़) एवं पूर्व में वट वृक्ष शुभ होते हैं—

उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः । (बृहत्संहिता)

चम्पा, गुलाब, केतकी, मालती, मल्लिका आदि पुष्प-वृक्ष गृह में प्रशस्त होते हैं । बेल, अनार, नागकेसर, कटहल, नारियल तथा नीम आदि वृक्ष प्रशस्त होते हैं—

यत्र तत्र स्थिताः वृक्षाः बिल्वदाडिमकेसराः ।
पनसो नारिकेलश्च शुभं कुर्वन्ति नित्यशः ॥

(वास्तुसौख्य)

वर्जित वृक्ष—गृह के समीप दूध वाले, काँटेदार एवं फलदार वृक्ष नहीं लगाना चाहिये तथा इनके काष्ठ का भी गृह-निर्माण में प्रयोग वर्जित है—

आसन्ना कण्टकिनो रिपुभयदा क्षीरिणोऽर्थनाशाय ।
फलिनः प्रजाक्षयकराः दारुण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥

(वास्तुप्रबोध)

केले के वृक्ष के विषय में दो प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। एक मत के अनुसार केले के पेड़ गृह के समीप शुभ हैं, किन्तु अन्य मत के अनुसार केले का वृक्ष गृहस्वामी के लिये प्रशस्त नहीं होता है—

अश्वगन्धश्च कन्दश्च कदलीबीजपूरकः।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति॥

(वास्तुसौख्य)

जिस गृह में अश्वगन्ध, कन्द, केला एवं नीबू उगे हों वह गृहस्वामी कभी वृद्धि को नहीं प्राप्त करता है।

इस प्रकार सभी व्यवस्थाओं से युक्त गृह में विधि-पूर्वक वास्तुदेव की पूजा करने के पश्चात् गृह-प्रवेश करना चाहिये।

गृह के सोलह कक्ष

<table>
<tr><td>देवगृह</td><td>सर्ववस्तु संग्रह कक्ष</td><td>स्नानगृह</td><td>मथन गृह</td><td>रसोई</td></tr>
<tr><td>औषध-गृह</td><td colspan="3" rowspan="3">आँगन</td><td>आज्यगृह</td></tr>
<tr><td>भाण्डार</td><td>शयनकक्ष</td></tr>
<tr><td>रतिगृह</td><td>शौचालय</td></tr>
<tr><td>धान्यगृह</td><td>कोपभवन</td><td>भोजनकक्ष</td><td>विद्याभ्यास कक्ष</td><td>शस्त्रागार</td></tr>
</table>

गृहनिर्माण एवं गृहव्यवस्था से सम्बद्ध कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य

१. गृह-निर्माण के सभी नियमों का पालन, विशेषकर आय-व्यय, भूमि-शुद्धि आदि का घास-फूस से निर्मित भवन में नहीं करना चाहिये—

आयव्ययौ भूमिशुद्धिं तृणगेहे न चिन्तयेत्। (वास्तुसौख्य)

इसी प्रकार पुराने गृह में शिलान्यास भी नहीं करना चाहिये—

शिलान्यासादि नो कुर्यात् तथागारे पुरातने। (वास्तुसौख्य)

२. ३२ हाथ से अधिक बड़े गृह में भी आय-व्यय का विचार नहीं करना चाहिये—

यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम्। (वास्तुसौख्य)

३. यदि पूर्व-निर्मित गृह में वृद्धि करनी हो तो सभी दिशाओं में बढ़ाना चाहिये।

यदि किसी कारणवश सभी दिशाओं में वृद्धि न करनी हो तो पूर्व अथवा उत्तर में करे। इसमें कम हानि (पूर्व में मित्रवैर, उत्तर में मनस्ताप) होती है। दक्षिण-वृद्धि से मृत्यु-भय एवं पश्चिम-वृद्धि से धन-हानि होती है—

इच्छेद् यदि गृहवृद्धिं ततः समन्ताद्विवर्धयेत्तुल्यम्।
एकोद्देशे दोषः प्रागथवाऽप्युत्तरे कुर्यात्॥

(वास्तुसौख्य)

४. गृह के मध्य भाग में स्तम्भ आदि का निर्माण नहीं करना चाहिये। वहाँ न तो भारी सामान रखे एवं न ही जूठा पात्र, झाड़ू या अपवित्र वस्तु रखे। यह गृह का हृदय होता है।

५. गृह का पूर्व एवं उत्तर नीचा तथा दक्षिण एवं पश्चिम भाग ऊँचा रहना चाहिये। यह गृहस्वामी को धन एवं सभी प्रकार से उन्नति प्रदान करता है—

स्यादुन्नतिः पूर्वनते नराणां वास्तौ धनं दक्षिणभागतुङ्गे।
क्षयो धनानां विनते प्रतीच्यां उच्चैर्विनाशो ध्रुवमुत्तरेषु।

(वास्तुप्रबोध)

६. गृह चन्द्रवेधी (दक्षिण एवं उत्तर में लम्बा) होना चाहिये—

चन्द्रवेधं गृहं कार्यं सूर्यवेधं जलाशयम्। (वास्तुप्रबोध)

७. गृह में स्तम्भ एवं भित्ति आदि का निर्माण प्रस्तर से नहीं कराना चाहिये। यह देवालय, मठ एवं राज-भवन में ही प्रशस्त होता है—

प्रासादे च मठे नरेन्द्रभवने शैलः शुभो नो गृहे।

(राजवल्लभमण्डन)

८. गृह के ऊपर दूसरे एवं तीसरे प्रहर किसी वृक्ष की छाया नहीं पड़नी चाहिये—

छाया वृक्षस्य न शुभा यामादूर्ध्वं कदाचन।
न प्रभा दुष्टफलदा याममात्रावशेषके॥

(गृहरत्नविभूषण)

९. गृह की छाया दिन के दूसरे एवं तीसरे प्रहर में कूप पर नहीं पड़नी चाहिये तथा गृह के भूतल (ग्राउण्ड फ्लोर) तक धूप एवं वायु का प्रवेश होना चाहिये—

देवालयं वा भवनं मठश्च भानोः करैर्वायुभिरेव भिन्नम्।
तन्मूलभूमौ परिवर्जनीयं छाया गता यस्य गृहस्य कूपे॥

(राजवल्लभमण्डन)

१०. गृह के सम्मुख देवालय, विशेषकर रुद्र, सूर्य, जिन, वासुदेव या ब्रह्मा का नहीं होना चाहिये। ये गृहस्वामी को कष्ट प्रदान करते हैं—

वर्जयेदर्हतः पृष्ठं दृष्टिं चण्डीशसूर्ययोः।
वामत्वं वासुदेवस्य दक्षिणं ब्रह्मणः पुनः॥

(वास्तुसौख्य)

कुछ आचार तथा व्यवस्थायें गृह के भीतर भी विचारणीय होती हैं। इनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—

११. गृह में शयन करते समय सदा ध्यान रखना चहिये कि सिर पूर्व या दक्षिण की ओर रहे। उत्तर दिशा में शव का सिर होता है तथा पश्चिम दिशा सोने वाले को प्रबल चिन्ता प्रदान करती है। पूर्व सिर करके सोने से विद्या एवं दक्षिण सिर करके सोने से धन-सम्पत्ति प्राप्त होती है—

प्राक्शिरः शयने विद्या दक्षिणे सुखसम्पदः।
पश्चिमे प्रबला चिन्ता हानिर्मृत्युः तथोत्तरे॥

(आचारमयूख)

इस तथ्य की पुष्टि पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड (५१।१२५-१२६) एवं विष्णु-पुराण (३।११।१११) से भी होती है। इसी से वास्तु शास्त्र में शयन गृह का विधान दक्षिण दिशा में किया गया है।

१२. गृह में एक बित्ते से अधिक बड़ी मूर्त्ति नहीं रखनी चाहिये। इससे बड़ी मूर्ति देवालय में ही प्रशस्त होती है—

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥

(मत्स्यपुराण)

पूजा करते समय उपासक का मुख पूर्व या पश्चिम होना चाहिये। देवता की प्रतिमा उसके सम्मुख पूर्व या पश्चिम-मुख रहनी चाहिये।

१३. दाँतों की सफाई कार्य पूर्व या उत्तर-मुख करना चाहिये। पश्चिम एवं दक्षिण में मंजन-कुल्ला वर्जित है—

पश्चिमे दक्षिणे चैव न कुर्याद् दन्तधावनम्। (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

१४. भोजन करते समय पूर्व-मुख होकर बैठना प्रशस्त माना गया है। शेष दिशाओं में उत्तर को छोड़ कर (दक्षिण एवं पश्चिम दिशा) भोजन करना अशुभ माना गया है—

प्राच्यां नरो लभेदायुर्याम्यां प्रेतत्वमश्नुते।
वारुणे च भवेद्रोगी आयुर्वित्तं तथोत्तरे॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

१५. शौच करते समय दिन में उत्तर एवं रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर मुख रखना चाहिये। इसे स्वास्थ्यप्रद माना गया है—

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्याद् उदङ्मुखम्।
रात्रौ कुर्याद् दक्षिणास्य एवं ह्यायुर्न हीयते॥

(वसिष्ठस्मृति)

इस प्रकार आचार-व्यवस्था का पालन करते हुये गृहस्थ सुखी रहता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय वास्तु-शास्त्र अत्यन्त तर्क-संगत एवं वैज्ञानिक ढंग से गृह एवं गृह में निवास की रीति का उल्लेख करता है, जो भारतीय वातावरण, परिस्थितियों एवं जीवन-दर्शन के सर्वथा अनुकूल है। यह गृह-निर्माण से ही नहीं, अपितु सुखी-स्वस्थ जीवन-शैली से भी सम्बद्ध है। वास्तुशास्त्र के नियमों का पालन वर्तमान युग में भी मंगलमय परिणाम प्रदान करता है।

○

गृहवास्तुप्रदीपः

॥ श्रीः ॥

गृहवास्तुप्रदीपः

अथ गृहप्रकरणम्

(गृह-प्रकरण)

यद् ग्रामभं द्व्यङ्कसुतेशकाष्ठा
मितं भवेल्लाभमतः शुभेशः ।
यद् भं शशाङ्काग्निनगाब्धितुल्यः
मध्योऽष्टषट्कार्कमतो निषिद्धः ॥१॥

(**वास्तुरत्नाकर** पृ.४, श्लोक २२; **वास्तुप्रदीप**)

गृहस्वामी के जन्म की राशि से जिस ग्राम की राशि दूसरे, नवें, पाँचवें, ग्यारहवें एवं दसवें स्थान पर हो, वह ग्राम नक्षत्र की दृष्टि से निवास हेतु शुभ होता है। इसके विपरीत पहली, तीसरी, सातवीं, चौथी, आठवीं, छठीं एवं बारहवीं राशि वाला ग्राम अशुभ होता है।

विशेष—यह श्लोक **वास्तुरत्नाकर**—पृ.४, श्लोक २२ में भी प्राप्त होता है, किन्तु कुछ परिवर्तन वहाँ दृष्टिगोचर होता है—

द्वितीय पङ्क्ति ····काष्ठामितं भवेल्लाभगतः शुभः सः ।
तृतीय पङ्क्ति ····ब्धितुल्यम् ।
चतुर्थ पङ्क्ति ····मितं निषिद्धः ।

ग्रामे यत्र भवेदृक्षे तदाद्याः सप्त मस्तके ।
पृष्ठे सप्त हृदि सप्त पादे सप्त स्वतारकाः ॥२॥

ग्राम के नक्षत्र से प्रारम्भ कर गृहस्वामी के जन्म-नक्षत्र तक गणना करनी चाहिये। इनमें ७ नक्षत्र मस्तक, ७ पीठ, ७ हृदय एवं ७ नक्षत्र पैरों पर रखना चाहिये।

विशेष—बृहद्दैवज्ञरञ्जन का यह श्लोक **वास्तुरत्नाकर** में भी प्राप्त होता है। वहाँ इसकी दूसरी पंक्ति इस प्रकार प्राप्त होती है—

पृष्ठे च हृदये सप्त पादे च सप्ततारकाः ।

जिस अङ्ग में गृहस्वामी का जन्मनक्षत्र पड़ेगा, उसका फल इस प्रकार है—

मस्तके च धनी मान्यः पृष्ठे हानिश्च निर्धनम् ।
हृदये सुखसम्प्राप्तिः पादे पर्यटनं फलम् ॥३॥

(**बृहद्दैवज्ञरञ्जन; वास्तुरत्नाकर** पृ.४,१८)

गृहस्वामी का जन्म-नक्षत्र मस्तक पर हो तो धन एवं मान की प्राप्ति, पीठ पर हो तो हानि एवं धनहीनता, हृदय में हो तो सुख की प्राप्ति एवं पैर में हो तो गृहस्वामी को देशाटन का लाभ होता है।

अथ वर्गमैत्रीविचारः

(वर्गमैत्री-विचार)

अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनोः।
सर्पाखुमृगावीनां निजपञ्चमवैरीनामष्टौ ॥४॥

अ (स्वर), कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, य, र, ल, व, श, ष, स, ह क्रमशः गरुड़, बिल्ली, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, गज एवं मेष के स्वामी हैं। अपने से पाँचवें को अपने वर्ग का वैरी कहा गया है।

यथा—गरुड़ का सर्प, मार्जार का मूषक, सिंह का गज एवं श्वान का मेष वैरी है। इन्हीं के आधार पर वर्गों का भी परिगणन करना चाहिये।

स्ववर्गात् पञ्चमो शत्रुः स्वर्क्षे स्वेति मित्रसंज्ञकः।
तृतीयो मित्रसंज्ञः स्यादुदासीनो द्वितीयकः।
नामग्रामैकयोर्वर्गे चैके स्यादुत्तमोत्तमः ॥५॥

अपने वर्ग से पाँचवाँ वर्ग शत्रु होता है। ग्राम एवं गृहस्वामी के नाम का वर्ग प्रथम अथवा तीसरा पड़े तो मैत्री सम्बन्ध एवं दूसरा पड़े तो सम्बन्ध उदासीन होता है। गृहस्वामी एवं ग्राम का वर्ग यदि एक ही हो तो सर्वोत्तम होता है।

दिशा के अनुसार वर्गों की स्थिति इस प्रकार है—

पूर्व

ईशान ८   १   २ आग्नेय

श ष स ह	अ इ उ ए ओ	क वर्ग
य र ल व		च वर्ग
प वर्ग	त वर्ग	ट वर्ग

उत्तर ७   ३ दक्षिण

वायव्य ६   ५   ४ नैर्ऋत्य

पश्चिम

अथ काकिणीविचारः

(काकिणी-विचार)

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिस्तु हरेद् भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत् ॥६॥

(वास्तुप्रबोध पृ.५, १३; बृहद्वास्तुमाला पृ.५; वास्तुरत्नावली पृ.८)

अपने नाम के आदि अक्षर के वर्ग की संख्या को दुगुनी करके ग्राम के वर्ग की संख्या जोड़ देनी चाहिये। प्राप्त संख्या में ८ से भाग देने पर जो शेष रहे, उससे गृह-स्वामी की काकिणी का ज्ञान होता है।

ग्राम की काकिणी के ज्ञान हेतु ग्राम के प्रथमाक्षर के वर्ग की संख्या को दुगुनी कर अपने वर्ग की संख्या जोड़ देनी चाहिये। योगफल में ८ का भाग देने पर जो शेष बचे, उससे ग्राम की काकिणी ज्ञात होती है।

इन दोनों काकिणियों में जिसकी काकिणी अधिक होती है, वह ऋणी होता है।

विशेष—वास्तुरत्नावली में इस श्लोक के साथ ही रामदैवज्ञ का मत भी उल्लिखित है—

यथोक्तं रामदैवज्ञेन—

स्ववर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढ्यं गजैः शेषितम्।
काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्वितरतो यस्याधिकः सोऽर्थदः॥

अथ राशिपरत्वेन वर्गपरत्वेन च निषिद्धा दिशा

(राशि एवं वर्ग के अनुसार वर्जित दिशा)

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च।
कर्को धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्वद्
वर्गाः स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्र्याः॥७॥

(**मुहूर्तचिन्ता.**, वास्तु.१; **बृहद्वास्तुमाला** पृ.४,१९; **वास्तुप्रबोध** पृ.३,७)

वृष, सिंह, मकर एवं मिथुन राशि के लोगों को ग्राम के मध्य में निवास नहीं करना चाहिए। ग्राम के पूर्व में वृश्चिक, आग्नेय में मीन, दक्षिण में कन्या, नैर्ऋत्य में कर्क, पश्चिम में धनु, वायव्य में तुला, उत्तर में मेष एवं ईशान में कुम्भ राशि के व्यक्तियों को निवास नहीं बनाना चाहिए। अपने वर्ग से पाँचवें वर्ग की दिशा छोड़ कर अन्य पूर्व आदि दिशायें बली होती हैं।

तात्पर्य यह है कि तवर्ग एवं वृश्चिक राशि को पूर्व में; पवर्ग एवं मीन राशि को आग्नेय में; य, र, ल, व एवं कन्या राशि को दक्षिण में; श, ष, स, ह एवं कर्क राशि को नैर्ऋत्य में; अ, इ, उ, ए, ओ एवं धनु राशि को पश्चिम में; कवर्ग एवं तुला राशि को वायव्य में; चवर्ग एवं मेष राशि को उत्तर में तथा टवर्ग एवं कुम्भ राशि को ईशान में आवास नहीं बनवाना चाहिए। प्रतिकूल दिशाओं को छोड़कर शेष दिशायें शुभ होती हैं। इसी प्रकार ग्राम का मध्य वृष, सिंह, मकर एवं मिथुन राशि के आवास के लिये त्याज्य है। शेष आठो दिशायें उनके लिए शुभ हैं।

राशिपरक दिग्वैर एवं निषिद्ध दिशा

ईशान	पूर्व	आग्नेय
कुम्भ, टवर्ग	वृश्चिक, तवर्ग	मीन, पवर्ग
मेष, चवर्ग	वृष, सिंह, मकर, मिथुन	कन्या, य र ल व
तुला, कवर्ग	धनु अ इ उ ए ओ	कर्क, श ष स ह
वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य

(बाएँ: उत्तर; दाएँ: दक्षिण)

अथ दशाविचारः

(दशा-विचार)

अथाष्टवर्गाः　क्रमतोऽष्टबाणरसाब्धिसप्तेन्दुगुणाश्विनश्च ।
नृग्रामदिग्वर्गमिताङ्कयोगे　सूर्याद्दशेशा　नवभक्तशेषात् ॥८॥
सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दाः　सौम्याश्च　केतुर्भृगुजः　क्रमेण ।
षट्दिग्नगाधृत्यवनीश्वराङ्कचन्द्राः　घनाः　सप्तनखाः　क्रमेण ॥९॥

अ, क, च, ट, त, प, य, श—इन ८ वर्गों की संख्या क्रमशः ८, ५, ६, ४, ७, १, ३, २ कही गई है। मनुष्य के वर्ग की संख्या, ग्राम के वर्ग की संख्या एवं दिग्वर्ग की संख्याओं को जोड़ कर ९ से भाग देने पर जो संख्या शेष बचे, उससे सूर्यादि की दशा का बोध होता है। १ शेष होने पर सूर्य, २ शेष होने पर चन्द्रमा, ३ शेष हो तो मंगल, ४ शेष होने पर राहु, ५ शेष होने पर गुरु, ६ शेष रहने पर शनि, ७ शेष हो तो बुध, ८ शेष होने पर केतु एवं ९ शेष रहने पर शुक्र की दशा होती है। सूर्य की दशा ६ वर्ष, चन्द्रमा की १० वर्ष, मंगल की ७ वर्ष, राहु की १८ वर्ष, गुरु की १६ वर्ष, शनि की १९ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, केतु की ७ वर्ष एवं शुक्र की २० वर्ष होती है।

विशेष—उपर्युक्त श्लोक का मूल ग्रन्थ में प्राप्त पाठ किञ्चित् पृथक् है, जो इस प्रकार है—

अथ　षष्ठवर्गजाः　क्रमतोऽष्टत्बाणरसाब्धिसप्तेन्दुगुणाश्विलश्च ।
नृग्रामदिग्वर्गमिताङ्कयोगे　सूर्यादशेशावसुभक्तशेषात् ॥
सूर्येन्दुभौमा बुधसौरिजीवाः सिंहीसुतो वै भृगुजः क्रमेण ।
षट्बाणचन्द्रा　वसवो　घनाशा　नवेन्दवोऽर्काककुयमास्तददगः ॥

प्राप्त श्लोक ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त एवं वास्तुशास्त्र के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है; अतः इस पाठ को छोड़कर **वास्तुप्रबोध** (पृ.३, श्लोक ८,९) का पाठ इस ग्रन्थ में रखा गया है, जो मूल ग्रन्थ के श्लोक से अत्यधिक साम्य रखता है तथा अन्य वास्तु- ग्रन्थों एवं ज्योतिष से सम्मत अर्थ प्रदान करता है।

स्वेष्वेषु वर्षप्रमितेषु तेषां दशाफलं तत्र निवासिनां च।
तदुत्तरादुत्तरतो दशेशफलं विकल्प्यं च दशाक्रमेण ॥१०॥

अपने-अपने वर्ष-प्रमाण के अनुसार उपर्युक्त ग्रहों की स्थिति होती है एवं उस काल में उन ग्रहों की दशा का फल मनुष्य को प्राप्त होता है। उपर्युक्त ग्रह अपने-अपने क्रम के अनुसार आगे-पीछे आते हैं एवं पूर्वोक्त वर्ष तक एक स्थान पर निवास करते हैं।

सूर्यादिदशाफलानि
(सूर्य आदि की दशा के फल)

उद्विग्नचित्तः परिपूर्णवित्तो वह्न्याभितप्तो बहुसौख्ययुक्तः।
रोगाभितप्तो बहुद्रव्ययुक्तो ज्वरान्वितः सर्वसुखान्वितश्च ॥११॥

(इस श्लोक में दशाफल 'सूर्येन्दुभौमा बुधसौरिजीवाः सिंहीसुतो वै भृगुजः क्रमेण' के अनुसार वर्णित है)। सूर्य की दशा में चित्त में व्याकुलता, चन्द्रमा की दशा में धन की परिपूर्णता, मंगल की दशा में अग्नि-भय, बुध की दशा में अत्यन्त सुख, शनि की दशा में रोग से पीड़ा, बृहस्पति की दशा में धन का बाहुल्य, राहु की दशा में ज्वर से कष्ट एवं शुक्र की दशा में सभी प्रकार के सुख होते हैं।

विशेष—यह श्लोक **बृहद्वास्तुमाला** (पृ.७, श्लोक २५) में इस प्रकार प्राप्त होता है—

उद्विग्नचित्तः परिपूर्णवित्तो वह्न्याभिभूतो ज्वरपीडिताङ्गः।
सौख्यान्वितो रोगयुतः सुखाढ्ये दुःखान्वितः सर्वसुखान्वितश्च ॥

यह श्लोक **वास्तुरत्नाकर** (पृ.७, श्लोक ३९) में भी प्राप्त होता है। वहाँ 'वह्न्याभितप्तो' के स्थान पर 'भयाभितप्तो' पाठ है। ये सभी दशाफल सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु एवं शुक्र के क्रम से वर्णित हैं।

यद्यद् दशा सौम्यफला निरुक्ता तत्तद्दशोक्तं सकलं शुभं स्यात्।
असत्फलायाः फलमेतदेव दशोक्तरीत्या त्वसदन्यरीत्या ॥१२॥

(**वास्तुरत्नाकर** पृ.८, ४०)

जिन-जिन ग्रहों की दशा सौम्य फल से युक्त कही गई है, उनकी दशा में सभी शुभ फल प्राप्त होता है। जिन ग्रहों का फल अशुभ कहा गया है उनकी दशा में अशुभ फल की प्राप्ति होती है। ग्रहों की दशा का विचार उपर्युक्त रीति से करना चाहिए। अन्य रीति से दशा-विचार निष्फल होता है।

अथ वर्णपरत्वेन भूमिविचारः
(वर्णानुसार भूमि-विचार)

भूमीसुराणामथ भूः सितेष्टा
या रक्तवर्णा नृपतेः प्रशस्ता।

पीता च वैश्यस्य च कृष्णवर्णा
शस्ता समस्ता खलु शूद्रजातेः ॥१३॥

श्वेत वर्ण की मिट्टी वाली भूमि ब्राह्मण के योग्य, रक्त वर्ण की मिट्टी वाली भूमि राजा (क्षत्रिय) के योग्य, पीत वर्ण की मिट्टी वाली भूमि वैश्य के एवं कृष्ण वर्ण की मिट्टी वाली भूमि शूद्र के योग्य होती है।

भूमिः कुशाढ्या शरसंयुता च
दूर्वान्विता काशयुता क्रमेण।
माधुर्ययुक्ता च कषायकाम्ला
कट्वी प्रशस्ता द्विजवर्गतो वा ॥१४॥

कुशयुक्त भूमि ब्राह्मण जाति के लिये, शरयुक्त भूमि क्षत्रिय वर्ण के लिये, दूब वाली भूमि वैश्य वर्ण के लिये एवं काश से युक्त भूमि शूद्र वर्ण के लिये अनुकूल होती है।

इसी प्रकार मधुर स्वाद वाली भूमि ब्राह्मण, कषाय स्वाद वाली भूमि क्षत्रिय, अम्ल स्वाद वाली वैश्य एवं कटु स्वाद वाली शूद्र वर्ण के लिए प्रशस्त होती है।

(उपर्युक्त स्वाद एवं वर्ण का सम्बन्ध **बृहत्संहिता** (५३,९३,९७) में प्राप्त होता है।

अथ गृहसमीपे निषिद्धवृक्षाः
(गृह के समीप वर्जित वृक्ष)

आसन्नगाः कण्टकिनोऽथ वृक्षाः
सद्विड्भयास्त्वर्थहराः सदुग्धाः।
प्रजाक्षया नेष्टफलाः समस्ताः
तस्माद्विवर्ज्याः सकलाश्च वृक्षाः ॥१५॥

(वास्तुप्रदीप २२; वास्तुरत्नाकर पृ.६८,३६वाँ श्लोक)

गृह के निकट काँटेदार वृक्ष होने पर शत्रु का भय होता है। दूध वाले वृक्ष धन का नाश करते हैं तथा फलयुक्त वृक्ष सन्तति-नाश करते हैं। अतः गृह के निकट इन सभी वृक्षों का त्याग करना चाहिये।

अथ दिक्परत्वेन गृहसमीपे शुभवृक्षाः
(दिशानुसार गृह के समीप शुभ वृक्ष)

प्लक्षोत्तरं पूर्ववटं च शस्तं
स्थानात्तथोदुम्बरदक्षिणं च।
यत्पश्चिमाश्वत्थकमुत्तमं च
चातुर्दिशं भूतरुशुद्धभागम् ॥१६॥

गृह के उत्तर भाग में प्लक्ष (पाकड़), पूर्व में वट (बरगद), दक्षिण में उदुम्बर (गूलर) एवं पश्चिम में अश्वत्थ (पीपल) प्रशस्त वृक्ष होते हैं। गृह के चारो दिशाओं में इस क्रम से वृक्ष हों तो उस भूमि पर गृह-निर्माण प्रशस्त होता है।

अथ दकार्गलत्वेन कूपविचारः
(जलस्रोत के अनुसार कूप-विचार)

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाश—
स्त्वीशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।
सूनोर्नाशः श्री(स्त्री)विनाशो मृतिश्च
सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥१७॥

(वास्तुरत्नावली; बृहद्वास्तुमाला पृ.१४५,११५)

गृह के मध्य भाग में कूप होने से धन की हानि, ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य की वृद्धि, अग्निकोण में पुत्र-हानि, दक्षिण में श्री (अथवा स्त्री) की हानि, नैर्ऋत्य कोण में गृहस्वामी की मृत्यु, पश्चिम में सम्पत्ति, वायव्य में शत्रु से पीड़ा एवं उत्तर में कूप होने से सुख की प्राप्ति होती है।

अथ भूमिशोधनविधानम्
(भूमि-शोधन का विधान)

मध्ये गृहं हस्तमितं खनित्वा सम्पूरयेत्पांशुभिराश्रुतस्य ।
सम्पूरयित्वाधिकतामुपेतः पांशुर्यदा तद्गृहमुत्तमं हि ।
समे समं न्यूनतरे सदोनं न कारयेदूनगृहं कदाचित् ॥१८॥

(वास्तुप्रदीप; वास्तुरत्नाकर)

गृह-निर्माण के लिए भूमि के मध्य में एक हाथ का गड्ढा खोद कर गड्ढे से निकली हुई मिट्टी से उस गड्ढे को भरना चाहिये। यदि गड्ढे से निकली मिट्टी गड्ढा भरने के बाद बच जाय तो भूमि गृहनिर्माण के लिए उत्तम, गड्ढा भरने में यदि पूरी मिट्टी लग जाय तो भूमि सामान्य एवं गड्ढा भरने में यदि मिट्टी कम पड़े तो ऐसी भूमि गृह के लिये त्याज्य होती है। उस पर गृह-निर्माण नहीं कराना चाहिए।

भूमावथाभ्यन्तरमाश्रितायामङ्गारकेशास्थितुषैर्यदत्र ।
वसेच्छुभार्थी न कदाचिदेव निष्कास्य भूमीतलतो वसेद्वा ॥१९॥

भूमि के भीतर जला हुआ अङ्गार (कोयला), बाल, हड्डी एवं अन्न की भूसी मिले तो वहाँ आवास नहीं बनवाना चाहिए अथवा कभी यदि बनवाना ही हो तो भूमि के भीतर से इन पदार्थों को निकाल देना चाहिए।

अथ पुनर्भूमिशोधनम्
(पुनः भूमि का शोधन)

कर्तुश्च हस्तप्रमितं खनित्वा खातं पयोभिः परिपूरितं चेत् ।
वसेच्छुखार्थी परिपूरितं स्यात् शुष्कं भवेत्तत्क्षणमेव नाशः ॥२०॥

(वास्तुप्रदीप; वास्तुरत्नावली; वास्तुरत्नाकर; बृहद्वास्तुमाला)

गृह-कर्त्ता के हस्त-प्रमाण से गड्ढा खोदकर उसमें पानी भरना चाहिये। जल भरने

के कुछ समय पश्चात् यदि जल गड्ढे में भरा रहे तो वह भूमि गृह बनाने के योग्य होती है। जल सूख जाने पर वह भूमि गृह-स्वामी के नाश का कारण बनती है।

अथ शकुनानि

(शकुन)

स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य स्याद्दक्षिणावर्तजलेन सौख्यम्।
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तुः ॥२१॥

(वास्तुरत्नावली; वास्तुरत्नाकर; बृहद्वास्तुमाला)

जल भरते हुये गड्ढे में यदि जल स्थिर रहे तो गृह स्थिर रहता है। यदि दाहिनी ओर जल का प्रवाह हो तो गृहस्वामी को सुख, जलधारा बायीं ओर प्रवाहित हो अथवा जल शीघ्रता से सूखे तो गृह-स्वामी की मृत्यु होती है।

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं तथेष्टकायाञ्च समृद्धिरत्र।
द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ॥२२॥

(वास्तुरत्नावली; बृहद्वास्तुमाला)

गड्ढे में यदि पत्थर एवं ईट के साथ सोना प्राप्त हो तो गृह में समृद्धि होती है। ताँबा आदि धातु प्राप्त होने पर वृद्धि एवं द्रव्य प्राप्त होने पर रमणीय सुख प्राप्त होता है।

पिपीलिकाः षोडशपक्षनिद्राः भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता।
तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पाः मरणप्रदाः स्युः ॥२३॥

(वास्तुरत्नावली; बृहद्वास्तुमाला)

गड्ढा खोदते समय यदि चीटियाँ या मेढक दिखें तो गृहकर्त्ता को उस भूमि पर गृह नहीं बनाना चाहिए। खात में भूसी, हड्डी, चमड़ा, वस्त्र, राख, किसी जीव का अण्डा एवं सर्प दिखाई पड़े तो गृहस्वामी की मृत्यु होती है।

वराटिका दुःखदरिद्रदात्री कार्पास एवाति ददाति रोगम्।
काष्ठं प्रदग्धं यदि रोगवृद्धिः भवेत्कलिः खर्प्परलब्धकेन।
लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तुं प्रदिशन्ति तज्ज्ञाः ॥२४॥

(वास्तुरत्नावली; बृहद्वास्तुमाला)

खात से निकली कौड़ी दुःख एवं दरिद्रता प्रदान करती है। कपास रोग को एवं जला हुआ काष्ठ रोग की अधिकता को प्रदान करता है। गड्ढे में खप्पर प्राप्त होने पर कलह तथा लोहा प्राप्त होने पर गृहकर्त्ता की मृत्यु होती है। इस प्रकार भली-भाँति विचार करने के पश्चात् ही गृह का निर्माण कराना चाहिए।

अथ गृहारम्भे मासनक्षत्राणि

(गृह के आरम्भ के समय मासों एवं नक्षत्रों का विचार)

कुम्भेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोऽजगेऽर्के च राधे।

मार्गे जूकालिगे सद्ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः
सूतीगेहन्त्वदित्यां हरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः ॥२५॥

(मुहूर्तगणपति; मुहूर्तचिन्तामणि)

फाल्गुन मास में कुम्भ राशि का सूर्य हो, श्रावण मास में कर्क एवं सिंह का सूर्य हो तथा पौष मास में मकर का सूर्य हो तो पूर्व-पश्चिममुख गृह का आरम्भ करना चाहिए। वैशाख में वृष राशि अथवा मेष राशि का सूर्य हो, अगहन में तुला अथवा वृश्चिक राशि का सूर्य हो तो दक्षिण-उत्तरमुख के गृह का आरम्भ करना चाहिए।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, पुष्य एवं हस्त—इन तेरह नक्षत्रों में गृहारम्भ करना चाहिए।

सूतिका-गृह का आरम्भ पुनर्वसु एवं प्रवेश श्रवण तथा अभिजित् नक्षत्र में करना चाहिए।

अथ गृहारम्भे अन्यमासानां विचारः
(गृहारम्भ के समय अन्य मासों का विचार)

चैत्रेऽजसूर्ये वृषभे च ज्येष्ठे कर्के शुचौ सिंहगते च भाद्रे।
घटे तथा चाश्विन उर्ज्जकेऽलौ नक्रे च पौषे गृहमामनन्ति ॥२६॥

चैत्र में मेष का सूर्य, ज्येष्ठ में वृष का सूर्य, आषाढ़ में कर्क का सूर्य, भाद्र में सिंह का सूर्य, आश्विन में तुला का सूर्य, कार्तिक में वृश्चिक का सूर्य एवं पौष में मकर का सूर्य हो तो गृहारम्भ प्रशस्त होता है।

अथ गृहारम्भे चैत्रादिमासानां फलानि
(गृहारम्भ के समय चैत्र आदि मासों का फल)

शोको धान्यं मृतिपशुहती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो
युद्धं भृत्यक्षतिरथ धनं भीश्च वह्नेर्भयञ्च।
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण
प्रोचे चैत्रान्मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम् ॥२७॥

(गृहरत्नविभूषण; बृहद्वास्तुमाला)

चैत्रादिमासों में गृहारम्भ करने पर गृहस्वामी को इस प्रकार क्रमानुसार फल प्राप्त होते हैं—चैत्र—शोक, वैशाख—धान्य, ज्येष्ठ—मृत्यु, आषाढ़—पशुहानि, श्रावण—धन की वृद्धि, भाद्र—विनाश, आश्विन(क्वार)—युद्ध, कार्तिक—सेवक की हानि, मार्गशीर्ष (अगहन)—धनलाभ, पौष—भय, माघ—अग्निभय, फाल्गुन—लक्ष्मी की प्राप्ति।

उपर्युक्त मास-फलों को मुनियों ने वास्तुशास्त्र की दृष्टि से कहा है।

विशेष—यह श्लोक किञ्चित् पाठ भेद के साथ **गृहरत्नविभूषण** (पृ.५७) एवं

बृहद्वास्तुमाला (पृ.६७) में भी प्राप्त होता है। द्वितीय पंक्ति '....रथफलश्रीश्च' के स्थान पर इस ग्रन्थ के मूल पाठ में 'धनभी' प्राप्त होता है। इस अर्थ की पुष्टि अन्य वास्तुग्रन्थों से भी होती है।

अथ गृहारम्भे महीसुप्तिविचारः

(गृहारम्भ के समय भूमि-शयन का विचार)

प्रद्योतनात् पञ्चनगाङ्कसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितानि भानि।
सुप्ता मही नैव गृहं विधेयं तडागवापीखननं न शस्तम् ॥२८॥

(वास्तुरत्नाकर; वास्तुप्रबोध; वास्तुरत्नावली)

सूर्य से पाँचवें, सातवें, नौवें, बारहवें, उन्नीसवें एवं छब्बीसवें नक्षत्र वाले दिन भूमि शयन करती है। भूमि-शयन के समय गृहनिर्माण, तडाग एवं वापी का खनन आरम्भ करने योग्य नहीं होता है।

अथ गृहारम्भे वृषभचक्रम्

(गृहारम्भ के समय वृषभ-चक्र)

शीर्षे वृषे गेहविधाविनर्क्षा
दाहोऽग्निभिश्चाब्धिभिरग्रपादे ।
शून्यं युगैः पश्चिमपादजाते
(स्थैर्यमग्निभिः पृष्ठे धनप्राप्तिः)
पुच्छेऽग्निभिः सद्यः पतेर्विनाशः ॥२९॥
लाभौ युगैर्निर्धनता च कुक्षौ पीडा च पत्युर्मुखगैस्त्रिभिश्च।
ये केचिदेवं वृषचक्रभेदं वदन्ति सत्यं बहुसम्मताद्वा।
तत्तन्मतं सूर्यभतस्तुरङ्गे नेष्टं शिवैः सद्दशभिस्त्वनिष्टम् ॥३०॥

जिस नक्षत्र पर सूर्य हो, वहाँ से प्रारम्भ कर ३ नक्षत्र वृष के शीर्ष पर रखना चाहिए। उसका फल अग्नि-दाह होता है। आगे ४ नक्षत्र वृष के अग्र पैरों पर रखने चाहिए, जिनका परिणाम शून्य होता है। इसके पश्चात् ४ नक्षत्र पिछले पादों पर रखे जाते हैं (जिनका परिणाम स्थिरता है)। पुनः तीन नक्षत्र पृष्ठ पर रखे जाते हैं, जिनका परिणाम धन-प्राप्ति है। पूँछ पर ३ नक्षत्र होते हैं, जिनका फल गृहस्वामी का विनाश कहा गया है। कुक्षि में ४ नक्षत्र रखने पर परिणाम लाभ (दाहिने) एवं निर्धनता (बायें) तथा ३ नक्षत्र वृष के मुख पर रखने पर गृहस्वामी को पीड़ा होती है, ऐसा कहा गया है। कुछ विद्वान् बहु-सम्मत वृष चक्र से पृथक् वृष चक्र के विषय में भी कहते हैं। उनके अनुसार सूर्य के नक्षत्र से ७ नक्षत्र अशुभ, ११ नक्षत्र शुभ एवं १० नक्षत्र अनिष्टकारी होते हैं।

विशेष—मूल पाठ में श्लोक २९ में 'स्थैर्यमग्निभिः' आदि पाठ प्राप्त नहीं

होता, किन्तु इसके विना पूर्व वाक्य का अर्थ पूर्ण नहीं होता है। इस वाक्य में प्रतिपादित तथ्य अन्य वास्तुग्रन्थों द्वारा सम्मत है।

अथ वास्तुपूजने दिशाविचारः

(वास्तु-पूजन में दिशा-विचार)

सिंहादलेः कुम्भधरावृषाश्च त्रिभिस्त्रिभेऽर्के च बुधैर्निरुक्ताः।
रक्षोमरुच्छम्भुकृशानदिक्षु सुखापयित्री खलु वास्तुपूजा ॥३१॥

(गृहरत्नविभूषण पृ. ७८, १०१)

सूर्य की स्थिति यदि सिंह, कन्या एवं तुला राशि पर हो तो नैर्ऋत्य कोण में वास्तुपूजा करनी चाहिए। यदि सूर्य वृश्चिक, धनु एवं मकर में हो तो वायव्य कोण में तथा कुम्भ, मीन एवं मेष में सूर्य होने पर ईशान कोण में वास्तु पूजा होनी चाहिए। वृष, मिथुन तथा कर्क राशि में सूर्य होने पर आग्नेय कोण में वास्तु-पूजा प्रशस्त होती है।

अथ गृहारम्भे शकुनम्

(गृहारम्भ के समय शकुन)

सुखानि द्रव्याणि भवन्ति तत्र विप्राश्च बालास्तरुणी सबाला।
वेश्या सुवेषा रजकी सुवस्त्री दृष्टास्तदा तत्र हिरण्यवृद्धिः ॥३२॥

यदि गृहारम्भ के समय ब्राह्मण, कन्या एवं बालक के साथ युवा स्त्री दिखाई पड़े तो उस गृह में सुख-सामग्री होती है। सुन्दर वेष धारण किये हुए वेश्या एवं धुले वस्त्रों के साथ धोबिन के दिखाई पड़ने पर गृह में सुवर्ण की वृद्धि होती है।

भेरीमृदङ्गानकदुन्दुभीनां शब्दैश्च शङ्खस्य च मङ्गलानि।
वदन्ति केचित् द्रविणं फलं वा तदा हिरण्यादिसमृद्धयः स्युः ॥३३॥

यदि गृहारम्भ के समय भेरी, मृदङ्ग एवं दुन्दुभि आदि वाद्यों के शब्द एवं शंख की मङ्गलध्वनि सुनाई पड़े तो कुछ विद्वानों के अनुसार गृहस्वामी को धन या फल की प्राप्ति होती है एवं उस गृह में सुवर्ण आदि समृद्धियाँ होती हैं।

अन्येऽपि चेन्मङ्गलवादिनः स्युर्भवन्ति तत्रैव सुमङ्गलानि।
क्षुते तथा निष्ठीवनके च वाचा रूक्षाख्यया सत्फलदं न वास्तु ॥३४॥

अन्य मङ्गल-स्वर भी मङ्गल शकुन होते हैं। छींकना, थूकना एवं रूखी वाणी अच्छे परिणाम नहीं देती है।

अथ वर्णपरत्वेन गृहवृद्धिः

(वर्णानुसार गृह-प्रमाण)

द्वात्रिंशदष्टाधिकविंशतिश्च सिद्धाः नखाः भूमिपतिः द्विजातेः।
दशांशयुक्तान्यपि क्षत्रियस्य वैश्यस्य च स्वाङ्गलवोज्झितानि।
शूद्रस्य च स्वस्वचतुर्विभागयुक्तानि दैर्घ्ये प्रभवन्ति भेदाः ॥३५॥

ब्राह्मण के गृह ५ प्रकार के होते हैं—३२, २८, २४, २०, एवं १६। क्षत्रिय का गृह ब्राह्मण के गृह से दस भाग अधिक होना चाहिए। वैश्य एवं शूद्र के गृह ब्राह्मण के गृह से ६ भाग कम चौड़ा होना चाहिए एवं सभी गृहों की लम्बाई, चौड़ाई से चतुर्थांश अधिक होनी चाहिए।

वर्णानुसार माप इस प्रकार होगा—

ब्राह्मण	**क्षत्रिय**	**वैश्य-शूद्र**
चौड़ाई-लम्बाई	चौड़ाई-लम्बाई	चौड़ाई-लम्बाई
३२×४०	३५'५×४४	२६'१६×३३'८
२८×३५	३०'१९×३८'१२	२३'८×२९'४
२४×३०	२६'९×३३	२०×२५
२०×२५	२२'१७×२९'१०	१६'१६×२०'२०
१६×२०	१७'१४×२२	१३'८×१७'१७

विशेष—इस प्रसंग में **बृहत्संहिता** (५३/१२,१३) का मत विचारणीय है। इसके अनुसार ब्राह्मण के ५ गृहों का माप ३२ हाथ से प्रारम्भ होकर ४-४ हाथ कम करते हुए १६ हाथ तक (३२, २८, २४, २०, १६); क्षत्रिय के ४ गृहों का माप २८ हाथ से प्रारम्भ होकर १६ हाथ तक (२८, २४, २०, १६); वैश्य के तीन गृह (२४, २०, १६) एवं शूद्र के २ गृहों का माप (२०, १६) होना चाहिए। लम्बाई में ब्राह्मण गृहों की चौड़ाई का १० भाग, क्षत्रिय का ८ भाग, वैश्य का ६ भाग एवं शूद्र का ४ भाग अधिक होना चाहिए—

चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत् सा चतुश्चतुर्हीना।
आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीव हीनानाम्॥
सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम्।
षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम्॥

इस मत की पुष्टि उत्पल एवं ब्रह्मशम्भु आचार्यों ने भी की है। उत्पल के अनुसार—

हस्तद्वात्रिंशता युक्तो विस्तारः स्याद् द्विजालये।
विस्तारं सदशांशं तु दैर्घ्यं तस्य प्रकल्पयेत्॥
त्रयाणां क्षत्रियादीनां मानं यत्पूर्वचोदितम्।
तच्चतुर्भिः करैस्ताक्ष्र्यं ह्रासयेदनुपूर्वशः॥
एषामष्टांशषड्भागपाददैर्घ्यं क्रमाद् भवेत्॥

अथ राज्ञो गृहवृद्धिः

(राजगृह-प्रमाण)

कश्चिज्जनो भूपसमानधर्मो गृहं विदध्याद् विधिनाप्यनेन।
स्यादुत्तमश्च स्वकयोग्यगेहं भूमीभुजां तत्क्रमपञ्चसंख्यम्॥३६॥

अष्टाधिकं हस्तशतं शतं च यन्नेत्रनन्दं प्रमितं पृथुत्वे।
वेदाष्टहस्तं रससप्तकञ्च दैर्घ्ये सपादानि भवन्ति भेदाः ॥३७॥

राजा के समान किसी व्यक्ति का गृह इस विधि से निर्मित होना चाहिये। राजाओं के लिए पाँच प्रकार के गृह कहे गए हैं। उनमें अपने अनुकूल गृह का चयन (अधिकार एवं प्रतिष्ठा आदि के अनुसार) करना चाहिए। राजा के ५ भवनों का विस्तार इस प्रकार है—१०८, १००, ९२, ८४ एवं ७६ हाथ। इनकी लम्बाई इनकी चौड़ाई से चतुर्थांश अधिक होती है।

विशेष—बृहत्संहिता (५३/४) में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया है—

उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं गृहं पृथुत्वेन।
अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण।

यहीं काश्यप-मत भी प्राप्त होता है—

अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारान्नृपमन्दिरम्।
कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि तु॥
विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्यं तेषां प्रकल्पयेत्।
एवं पञ्च नृपः कुर्याद् गृहाणि हि पृथक् पृथक्॥

अथ सेनापत्यादीनां गृहवृद्धिः
(सेनापति आदि का गृहप्रमाण)

षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः।
एवं पञ्च गृहाणि षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥३८॥

(बृहत्संहिता ५२/५)

विस्तारता–६४॥५८॥५२॥४६॥४०॥ दीर्घता–७४॥६७॥६०॥५३॥४६॥

सेनापति के पाँच प्रकार के गृह कहे गये हैं, जिनमें उत्तम गृह का माप ६४ हस्त है। शेष गृह ६-६ हाथ कम ५८, ५२, ४६ तथा ४० होते जाते हैं।

इन गृहों की लम्बाई उनकी चौड़ाई से ६ भाग अधिक ७४, ६७, ६०, ५३ एवं ४६ होती है।

अथ सचिवानां राजमहिषीणां गृहवृद्धिः
(सचिवों एवं रानियों का गृहप्रमाण)

षष्टिश्चतुश्चतुर्भिर्हीना वेश्मानि पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुतो दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥३९॥

(बृहत्संहिता ५२/६)

मन्त्रिणो विस्तारता—६०॥५६॥५२॥४८॥४४॥
दीर्घता—६७॥६३॥५८॥-५४॥४९॥
राजमहिष्या विस्तारता—३०॥२८॥२६॥२४॥२२॥
दीर्घता—३३॥३१॥-२९॥२७॥२४॥

सचिवों के पाँच प्रकार के गृह होते हैं। ये ६० हाथ से प्रारम्भ होकर ४-४ हाथ कम (५६, ५२, ४८, ४४) विस्तार वाले होते जाते हैं। इनकी लम्बाई में इनके विस्तार का अष्टम भाग जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार इनका विस्तार ६७, ६३, ५८, ५४ एवं ४९ हाथ होता है।

राजमहिषी के गृह का प्रमाण सचिव के गृह का आधा रखा जाता है। इन गृहों का विस्तार ३०, २८, २६, २४ एवं २२ हाथ तथा लम्बाई ३३, ३१, २९, २७ एवं २४ हाथ होनी चाहिए।

अथ युवराजस्य अनुजानाञ्च गृहवृद्धिः

(युवराज तथा छोटे भाइयों का गृहप्रमाण)

षड्भिः षड्भिश्चैव युवराजस्यापवर्जिताऽशीतिः।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥४०॥

(**बृहत्संहिता** ५२/७)

युवराजस्य विस्तारता—८०॥७४॥६८॥६२॥५६॥
दीर्घता—१०६॥९८॥-९०॥८२॥७४॥
युवराजानुजस्य विस्तारता—४०॥३७॥३४॥३१॥२८॥
दीर्घता—५३॥४९॥४५॥४१॥३७॥

युवराज के ५ प्रकार के गृहों का विस्तार ८० हाथ से प्रारम्भ होकर ६-६ हाथ कम (७४, ६८, ६२, ५६) होता जाता है। इनकी लम्बाई इनके विस्तार के तीसरे भाग से युक्त (१०६, ९८, ९०, ८२, ७४) होती है।

युवराज के छोटे भाइयों के ५ प्रकार के गृहों का प्रमाण युवराज के गृह के आधे होते हैं। इनका विस्तार ४०, ३७, ३४, ३१ एवं २८ हाथ तथा लम्बाई ५३, ४९, ४५, ४१ एवं ३७ हाथ होनी चाहिए।

अथ सामन्तादीनां गृहवृद्धिः

(सामन्त आदि का गृहप्रमाण)

नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम्।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥४१॥
अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषामेव कोशरतितुल्यम्।
युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥४२॥

(**बृहत्संहिता** ५२/८-९)

राजा एवं सचिव की गृहों की लम्बाई एवं चौड़ाई के मध्य जो अन्तर है, उसके बराबर सामन्त एवं प्रधान राजपुरुष का गृह बनाना चाहिये तथा राजा एवं युवराज के गृह के अन्तर के बराबर कञ्चुकी, वेश्या एवं कलाविदों का गृह होना चाहिए। सामन्त एवं राजपुरुष के गृहों का विस्तार ४८, ४४, ४०, ३६, ३३ तथा लम्बाई ६७, ६०, ५६, ५१, ४५ होगी। कञ्चुकी आदि के गृह का विस्तार २८, २६, २४, २२, २० एवं लम्बाई २८'८, २६'८, २४'८, २२'८, २०'८ होगी।

सभी अध्यक्षों एवं अधिकारियों के गृह राजा के कोश एवं आमोदगृह के बराबर बनाना चाहिए। कर्मशाला के अध्यक्ष के दूतों के गृह, युवराज एवं मन्त्री के गृह की लम्बाई एवं चौड़ाई के अन्तर के बराबर लम्बाई एवं चौड़ाई लेकर बनान चाहिए। इस प्रकार कर्माध्यक्ष के गृहों का माप चौड़ाई में २०, १८, १६, १४, १२ एवं लम्बाई ३९, ३५, ३२, २८, २५ होनी चाहिए।

अथ ज्योतिर्विदादीनां गृहवृद्धिः

(ज्योतिषी आदि का गृहप्रमाण)

चत्वारिंशद्धीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति।
षड्भागयुता दैर्घ्यं दैवज्ञपुरोधसोर्भिषक् ॥४३॥

(**बृहत्संहिता** ५२/१०)

ज्योतिर्वित्पुरोहितवैद्यानां विस्तारता—४०॥३६॥३२॥२८॥२४॥
दीर्घता—४६॥४२॥३७॥३२॥२८॥

ज्योतिषी, पुरोहित एवं वैद्य के ५ प्रकार के गृह ४० हाथ से प्रारम्भ होकर ४-४ हाथ कम होते जाते हैं एवं इनके दैर्घ्य में विस्तार के छठवें भाग को जोड़ दिया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त पाँच गृहों का विस्तार ४०, ३६, ३२, २८ एवं २४ हाथ तथा लम्बाई ४६, ४२, ३७, ३२ एवं २८ हाथ कही गई है।

अथ राशिपरत्वेन गृहद्वारम्

(राशि के अनुसार गृह के द्वार)

कर्कालिमीनाः द्विजराशयः स्यु-
र्महीश्वरा मेषधनुर्मृगेन्द्राः।
वृषश्च कन्या मकरोऽथ वैश्याः
शूद्राः नृयुक्कुम्भतुलाः भवन्ति ॥४४॥

कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशियाँ ब्राह्मण वर्ण की; मेष, धनु एवं सिंह क्षत्रिय वर्ण की; वृष, कन्या एवं मकर वैश्य वर्ण की तथा मिथुन, कुम्भ एवं तुला शूद्र वर्ण की राशियाँ हैं।

स्यात्प्राङ्मुखं ब्राह्मणराशि सद्म
चोदङ्मुखं क्षत्रियराशिकानाम्।

वैश्यस्य तद्दक्षिणदिङ्मुखं हि
शूद्राभिधानामथ पश्चिमास्याम् ॥४५॥

ब्राह्मण राशि के गृह का द्वार पूर्व दिशा में; क्षत्रिय राशि के गृह का द्वार उत्तर दिशा में; वैश्य राशि के गृह का द्वार दक्षिण दिशा में एवं शूद्र राशि के गृह का द्वार पश्चिम दिशा में होना चाहिए।

अथ द्वारविचारः
(द्वार-विचार)

पूर्वाण्यैशानादाग्नेयाद्दक्षिणानि स्यात्।
द्वाराणि नैर्ऋत्यादीनि पश्चिमानि वायव्योश्च ॥४६॥

ईशान कोण के द्वार को पूर्व दिशा में, आग्नेय कोण के द्वार को दक्षिण में, नैर्ऋत्य कोण के द्वार को पश्चिम में एवं वायव्य कोण के द्वार को उत्तर दिशा में जानना चाहिए।

अथ पूर्वादिदिक्षु द्वाराणां फलानि
(पूर्व आदि दिशाओं के द्वार-फल)

(पूर्वद्वारफलानि)
(पूर्व-द्वार के फल)

अनलभयं स्त्रीजन्म प्रभूतधनता नरेन्द्रतो लाभः।
क्रोधपरताऽनृतत्वं क्रौर्यं चौर्यञ्च पूर्वेण ॥४७॥

पूर्व दिशा में शिखि पद से अन्तरिक्ष पदपर्यन्त ८ पदों पर द्वारों के फल इस प्रकार हैं—अग्नि से भय, स्त्री सन्तानों का जन्म, धन की प्रचुरता, राजा से लाभ, अत्यधिक क्रोध, झूठ, क्रूरता एवं चोरी।

विशेष—यही श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ **बृहत्संहिता** में इस प्रकार है—

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ॥

(**बृहत्संहिता** ५२/७०)

(दक्षिणद्वारफलानि)
(दक्षिण-द्वार के फल)

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नञ्च याम्येन ॥४८॥

(**बृहत्संहिता** ५२।७१)

आग्नेय कोण से प्रारम्भ होकर नैर्ऋत्य कोण से पहले तक दक्षिण दिशा के ८ द्वारों के फल इस प्रकार हैं—कम पुत्र, दासता, नीचता, भोजन-पान एवं पुत्र की वृद्धि, भयानकता, किसी के उपकार को न मानना, धन का अभाव, सन्तान एवं पराक्रम की हानि।

(पश्चिमद्वारफलानि)

(पश्चिम-द्वार के फल)

सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न धनसुताप्तिः समस्तगुणसम्पत् ।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥४९॥

पश्चिम दिशा में नैर्ऋत्य कोण से प्रारम्भ कर ८ द्वारों के फल इस प्रकार हैं—पुत्र को कष्ट, शत्रु की वृद्धि, धन एवं पुत्र की प्राप्ति न होना, समस्त गुण एवं सम्पत्ति का लाभ, धन-सम्पत्ति, राज-भय, धन-क्षय एवं रोग।

विशेष—**बृहत्संहिता** (५२/७२) में भी यह श्लोक प्राप्त होता है। वहाँ 'समस्तगुणसम्पत्' के स्थान पर 'सुतार्थफलसम्पत्' कहा गया है।

(उत्तरद्वारफलानि)

(उत्तर-द्वार के फल)

वधबन्धो रिपुवृद्धिः धनसुतलाभः समस्तगुणसम्पत् ।
पुत्रधनाप्तिः वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ॥५०॥

(**बृहत्संहिता** ५२।७३)

वायव्य कोण से प्रारम्भ कर उत्तर दिशा के ८ द्वारों के फल इस प्रकार हैं—

वध एवं बन्धन, शत्रु की वृद्धि, धन एवं पुत्र की प्राप्ति, समस्त गुण-सम्पत्ति का लाभ, पुत्र एवं धन की प्राप्ति, पुत्र से शत्रुता, स्त्रियों में दोष एवं निर्धनता।

अथ ईशानादिचतुष्कोणानां द्वारफलानि

(ईशानादि चारो कोणों के द्वार-फल)

अन्य मत के अनुसार ईशान आदि कोणों से प्रारम्भ होकर चारो दिशाओं के द्वारफल इस प्रकार हैं—

दुःखशोकौ धनप्राप्तिर्नृपपूजा महद्धनम् ।
स्त्रीजन्म पुत्रताहानिः प्राच्यां द्वारफलानि च ॥५१॥

(**वास्तुसौख्य** ३३०)

ईशान से पूर्वदिशा के ८ द्वारों के फल इस प्रकार हैं—दुःख, शोक, धनप्राप्ति, राज-सम्मान, अत्यधिक धन, स्त्री सन्तान की अधिकता, पुत्रलाभ एवं हानि।

निधनं बन्धनं भीतिः पुत्राप्तिश्च धनागमः ।
यशोलब्धिः चौरभयं व्याधिर्भीतिश्च दक्षिणे ॥५२॥

(**वास्तुसौख्य** ३३१)

आग्नेय से दक्षिण के ८ द्वारों के फल इस प्रकार हैं—मृत्यु, बन्धन, भय, पुत्रप्राप्ति, धन की प्राप्ति, यश की प्राप्ति, चोरों से भय एवं रोग का भय।

नैःस्वं स्त्रीदूषणं हानिः सम्पत्प्रीतिः सुखागमः ।
शत्रुबाधा तथा दुःखं चोत्तरस्यां दिशि क्रमात् ॥५३॥

(वास्तुसौख्य ३३३)

उत्तर दिशा के ८ द्वारों के फल क्रमशः इस प्रकार कहे गये हैं—दरिद्रता, स्त्री-दोष, हानि, सम्पत्ति-प्राप्ति, सुखोपलब्धि, शत्रुबाधा और दुःख।

शत्रुवृद्धिः पुत्रप्राप्तिर्लक्ष्मीप्राप्तिर्धनागमः ।
सौभाग्यं धनलाभश्च दुःखं शोकं च पश्चिमे ॥५४॥

(वास्तुसौख्य ३३२)

पश्चिम दिशा के ८ द्वारफल क्रमशः इस प्रकार हैं—शत्रुवृद्धि, पुत्र-प्राप्ति, लक्ष्मीप्राप्ति, धनागम, सौभाग्यवृद्धि, धनलाभ, दुःख और शोक।

अथ द्वारवेधविचारः

(द्वार-वेध का विचार)

मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम् ।
उच्छ्रायाद् द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥५५॥

(बृहत्संहिता ५२/७४)

गृह के द्वार के सम्मुख मार्ग, वृक्ष, गृह का कोना, कूप, स्तम्भ एवं नाली या कीचड़ पड़े तो अशुभ होता है। द्वार की ऊँचाई की दुगुनी भूमि छोड़ कर यदि उपर्युक्त पड़ें तो दोष नहीं होता है।

अथ द्वारवेधफलम्

(द्वार-वेध के फल)

रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा ।
पङ्कद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिःस्त्राविणि प्रोक्तः ॥५६॥

(बृहत्संहिता ५२/७५)

मार्ग-वेध से युक्त द्वार गृहस्वामी का विनाश करता है। वृक्ष-वेध से कुमार-पुत्र को दोष, पङ्क-वेध होने पर शोक एवं नाली द्वारा वेध होने से धन का अधिक व्यय होता है।

कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे ।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणोऽभिमुखे ॥५७॥

(बृहत्संहिता ५२/७६)

कूप द्वारा द्वार-वेध होने से अपस्मार (मिरगी), देवता (देव-प्रतिमा) द्वारा द्वार-वेध होने से विनाश, स्तम्भ द्वारा द्वार-वेध होने से स्त्रियों में दोष एवं ब्रह्म-वेध होने पर कुल का नाश होता है।

अथ द्वारदोषाः
(द्वार के दोष)

उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः ।
मानाधिके नृपभयं व्यसनदं च भीतिदं नीचे ॥५८॥
(बृहत्संहिता ५२/७७)

द्वार के स्वयं खुलने पर उन्माद, अपने आप बन्द होने पर कुल का नाश, माप से अधिक बड़ा द्वार होने पर राजा से भय एवं प्रमाण से अधिक नीचा होने पर व्यसन एवं भय का कष्ट होता है।

विशेष—यह श्लोक **बृहत्संहिता** (५२/७७) में भी प्राप्त होता है। वहाँ चतुर्थ पाद 'दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च' प्राप्त होता है।

द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय सङ्कटाय च।
अविलिप्तं क्षुधाद् भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥५९॥

एक द्वार के ऊपर दूसरा द्वार कल्याणकर नहीं होता; अपितु संकट का कारण बनता है। बीच में अधिक फैला (मुरजाकार) द्वार भूख का भय तथा कुबड़ा द्वार कुल का विनाश करता है।

विशेष—यह श्लोक थोड़े पाठान्तर के साथ **बृहत्संहिता** (५२/७८) एवं **वास्तुसौख्य** (३५८) ग्रन्थ में भी प्राप्त होता है। **बृहत्संहिता** में 'अविलिप्तं' के स्थान पर 'आव्यात्तं' एवं **वास्तुसौख्य** में 'आध्मातं' पाठ प्राप्त होता है। 'आध्मातं' शब्द पर टिप्पणी करते हुए ग्रन्थकार ने 'आध्मातं मध्यविपुलं मुरजानुकारम्' लिखा है। इसके अनुसार यह द्वार दोनों सिरों पर कम चौड़ा एवं मध्य में अधिक चौड़ा होता है।

पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय ।
बाह्यावनतं प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ॥६०॥
(बृहत्संहिता ५२/७९, **वास्तुसौख्य** ३५९)

उदुम्बर के बोझ से अत्यधिक दबा हुआ द्वार गृहस्वामी को पीड़ा देता है। भीतर की ओर झुका हुआ द्वार अभाव का एवं बाहर की ओर झुका हुआ द्वार गृहस्वामी को प्रवास का कष्ट देता है। यदि द्वार की दिशा सही न हो तो गृहस्वामी को दस्युओं से कष्ट होता है।

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपर्द्ध्या ।
घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥६१॥
(बृहत्संहिता ५२/८०)

मुख्य द्वार के समान अन्य द्वारों की सज्जा नहीं की जानी चाहिए। मुख्य द्वार को कलश, नारियल आदि फल, पत्र एवं प्रमथ आदि मांगलिक द्रव्यों से सजाना चाहिए।

अथ ब्रह्मदिग्द्वारम्
(ब्रह्म-दिशा का द्वार)

ईशानैन्द्रदिशोर्मध्ये ब्रह्मदिक् त्वभिधीयते।
तत्र द्वारं न कर्तव्यं कुलनाशकरं यतः ॥६२॥

ईशान कोण एवं पूर्व दिशा का मध्य ब्रह्मदिशा कहलाती है। इन स्थानों पर द्वार की स्थापना नहीं करनी चाहिए। इससे गृहस्वामी के कुल का विनाश होता है।

अथ कोणविचारः
(कोणों का विचार)

ऐशान्यादिषु कोणेषु संस्थिता बाह्यतो गृहस्यैताः।
चरकी विदारिनामाथ पूतना राक्षसी चेति ॥६३॥

(बृहत्संहिता ५३/८३)

गृह से बाहर ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोण में इनकी स्थिति क्रमशः इस प्रकार होती है—चरकी, विदारी, पूतना एवं पापराक्षसी।

विशेष—इन चारो के साथ स्कन्द, अर्यमा, जम्बुक एवं पिलिपित्स आदि ग्रहों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। चरकी आदि कोणों में एवं स्कन्द आदि दिशाओं में स्थित होते हैं—

ऐशान्यां चरकी प्रोक्ता स्कन्दः प्राग्भागसंस्थितः।
हौताशन्यां विदारी च याम्यां चैवार्यमा स्थितः॥
पूतना नैर्ऋते ज्ञेया जम्बुकः पश्चिमे स्थितः।
राक्षसी चानिले कोणे पिलिपिञ्चस्तथोत्तरे॥

(बृहत्संहिता)

ईशान	पूर्व	आग्नेय
चरकी	**स्कन्द**	**विदारी**
उत्तर **पिलिपिञ्छ**		**अर्यमा** दक्षिण
राक्षसी	**जम्बुक**	**पूतना**
वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य
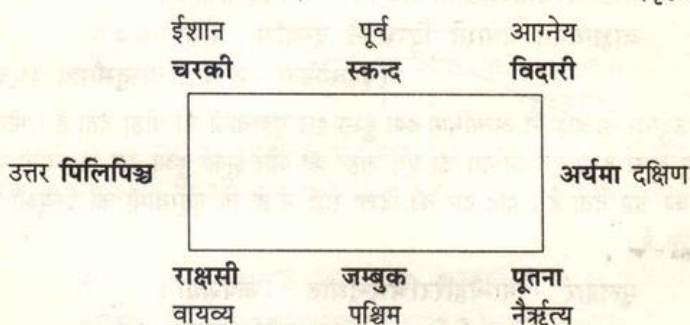
पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः।
श्वपचादयोऽन्त्यजात्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥६४॥

(बृहत्संहिता ५२/८२)

पुर, भवन एवं ग्राम के कोणों में जो निवास करते हैं, उन्हें दोष (दु:ख, कष्ट) होता है। श्वपच (चाण्डाल) आदि अन्त्यज (सङ्कर जाति) लोग ही वहाँ वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

अथ तिथिपरत्वेन द्वारविचारः

(तिथि के अनुसार द्वार-विचार)

पूर्णेन्दुतः प्राग्वदनं नवम्याः दिगुत्तरास्यं त्वथ पश्चिमास्यम्।
ईशादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति ॥६५॥

पूर्णिमा से अष्टमी पर्यन्त पूर्वमुख गृह, नवमी से चतुर्दशी (कृष्ण पक्ष) पर्यन्त उत्तरमुख गृह, अमावस्या से अष्टमी पर्यन्त पश्चिममुख गृह एवं नवमी से चतुर्दशी (शुक्ल पक्ष) पर्यन्त दक्षिणमुख गृह का प्रारम्भ श्रेयस्कर नहीं होता है।

अथ गृहारम्भे नक्षत्रपरत्वेन द्वारविचारः

(नक्षत्र के अनुसार द्वार-विचार)

कार्शानवात् सप्तकसप्तकानि प्राग्दिक्क्रमात् भानि भान्ति पृष्ठे।
द्वात्रेष्वथैतेषु चतुःककुप्सु पृष्ठाग्रजोज्वः परिवर्जनीयः ॥६६॥

कृत्तिका से प्रारम्भ कर ७-७ नक्षत्र पूर्वादि दिशा-क्रम से रखना चाहिए। कृत्तिका आदि ७ नक्षत्र पूर्व, मघा आदि ७ नक्षत्र दक्षिण, अनुराधा आदि ७ नक्षत्र पश्चिम एवं धनिष्ठा आदि ७ नक्षत्र उत्तर दिशा में रखना चाहिए। गृह के अग्र भाग एवं पृष्ठ भाग में चन्द्रमा की स्थिति से बचना चाहिए।

अथ गृहारम्भे निषेधः
(गृहारम्भ में निषेध)

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनाङ्गे विपञ्चके।
व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गृहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥६७॥

(**वास्तुप्रबोध** पृ. ५७, श्लोक २५)

मङ्गलवार एवं रविवार, रिक्ता तिथि (४।९।१४), अमावस्या, प्रतिपदा, चर लग्न (मेष, कर्क, तुला, मकर) और धनिष्ठा से ५ नक्षत्रों को छोड़ कर अन्य लग्न एवं नक्षत्रों में, जिस लग्न में शुभ ग्रह ८ एवं १२वें भाव को छोड़ कर अन्य भावों में हों तथा पाप ग्रह ३,११ एवं छठें भाव में हों तो ऐसे लग्न में गृहारम्भ करना चाहिए।

अथ गृहनक्षत्रयोगेन गृहारम्भे वारफलानि
(गृह-नक्षत्र के योग से वार-फल)

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवै-
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात्।
द्वीशाश्वितक्षिवसुपाशिशिवैः सशुक्रै-
र्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥६८॥
सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः
कौजेऽह्नि वेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात्।
सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तै-
र्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥६९॥

(**वास्तुप्रबोध** पृ. ५९-६०, श्लोक ३१-३२)

गुरुवार हो एवं पुष्य, ध्रुवसंज्ञक मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा तथा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में गुरु हो, उस समय गृहारम्भ करने से पुत्र एवं राज्य का लाभ होता है। विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा एवं शतभिषा नक्षत्र पर शुक्र हो एवं शुक्रवार हो तो गृहारम्भ करने से गृह धन-धान्य से पूर्ण रहता है।

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ़ एवं मूल नक्षत्र पर मंगल हो एवं मंगलवार हो, तो गृहारम्भ करने पर अग्निभय एवं पुत्र को कष्ट होता है। रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा एवं हस्त पर बुध हो एवं बुधवार हो, उस समय गृहारम्भ करने से गृह सुख एवं पुत्र से युक्त होता है।

विशेष—उपर्युक्त दोनों श्लोक मूल ग्रन्थ में पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त होते हैं। ये दोनों श्लोक **वास्तुप्रबोध** में पूर्ण रूप से प्राप्त हैं, अतः इन श्लोकों को वहीं से लेकर पूर्ण किया गया है।

अजैकपादाहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः ।
समन्दे मन्दवारे स्याद् रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥७०॥

(**वास्तुप्रबोध** पृ.६०, श्लोक ३३)

पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती एवं भरणी पर शनि हो एवं शनिवार हो तो गृहारम्भ करने पर गृह राक्षस एवं भूतों से युक्त होता है।

अथ गृहारम्भे ग्रहयोगात् गृहस्य स्थितिः

(ग्रह-योग के अनुसार गृह की स्थिति)

ज्ञशुक्रजीवार्कशनैश्चरेषु जायाम्बुलग्नारिसहोत्थगेषु।
स्थितं शतं जीवकुजार्कशुक्रे सपञ्चमे षट्त्रितनौ शते द्वौ ॥७१॥

यदि बुध, शुक्र, बृहस्पति, सूर्य एवं शनि क्रमशः ७, ४, १, ६ एवं ३ भाव में हों तो वह गृह १०० वर्ष तक स्थित रहता है। यदि बृहस्पति, मंगल, सूर्य एवं शुक्र ५, ६, ३ एवं १ भाव में हों तो गृह की स्थिति २०० वर्षों तक रहती है।

तन्वम्बराप्तिषु सितज्ञदिनेश्वरेषु केन्द्रे शतमितायुरिहालयं च।
शीतांशुरम्बरगतौ भवगौ कुजार्कौ बन्धौ गुरुर्गृहमशीति समायुरेव ॥७२॥

यदि १, १०, ११ भाव में शुक्र, बुध एवं सूर्य हों एवं केन्द्र में लग्न को छोड़ कर अन्यत्र बृहस्पति हो तो वह गृह १०० वर्ष तक स्थित रहता है।

चन्द्रमा यदि १० भाव में मंगल एवं शनि ११ भाव में एवं चतुर्थ भाव में बृहस्पति हो तो गृह की आयु ८० वर्ष होती है।

वरषदि निजौघगते भृगुजे तनौ सुखगते च गुरौ अथवा गृहम्।
भवगृहे निजतुङ्गगतेऽथवा रविसुते धनसौख्ययुतं चिरम् ॥७३॥

उच्च (मीन राशि) का शुक्र लग्न में या उच्च (कर्क राशि) का बृहस्पति चतुर्थ भाव में अथवा उच्च (तुला राशि) का शनि एकादश भाव में हो तो गृह बहुत समय तक लक्ष्मी एवं सुख से युक्त होता है।

परमनवांशगतो वरगो ग्रहो यदि सप्तमगोप्यथवा भवेत्।
प्रकुरुते परगं गृहमब्दान्तो न विमलो यदि वर्णपस्ति तदा ॥७४॥

गृहारम्भ के समय एक भी ग्रह शत्रु नवांश में होकर ७ या १० भाव में स्थित हो तो वह गृह एक वर्ष के भीतर दूसरे व्यक्ति के हाथ में चला जाता है। यदि वर्ण का स्वामी दुर्बल हो तो इस प्रकार का परिणाम होता है, अन्यथा सबल होने पर ऐसा नहीं होता है।

अथ वर्णस्वामिग्रहाः

(वर्णानुसार स्वामी-ग्रह)

द्विजपतिभवनौ गुरुभार्गवौ नरपतेरधिपौ रविभूसुतौ।
विडधिपो हिमदीधितिरिन्दुजौ भवति शूद्रपतिः शनिरन्त्यजः ॥७५॥

ब्राह्मण के अधिपति बृहस्पति एवं शुक्र, क्षत्रिय के रवि एवं मंगल, वैश्य के चन्द्रमा, शूद्र के बुध एवं अन्त्यज के स्वामी शनैश्चर हैं।

अथ गृहवृद्धेरभ्यन्तरं गृहायामविस्तारज्ञानार्थम्

ईष्टर्क्षशोधनप्रकारः

(अभीष्ट नक्षत्र का शोधन)

त्रिभिस्त्रिभिर्वेश्मनि कृत्तिकाद्यैरुद्वेगपुत्राप्तिधनानि शोकः ।
शत्रोर्भयं राजभयं च मृत्युः सुखं प्रवासश्च नवप्रभेदाः ॥७६॥

(**बृहद्वास्तुमाला** पृ. ५६, श्लोक ३)

गृह का अभीष्ट नक्षत्र यदि कृत्तिका, रोहिणी एवं मृगशिरा हो तो गृहस्वामी को उद्वेग होता है। आर्द्रा, पुनर्वसु एवं पुष्य हो तो पुत्रप्राप्ति; श्लेषा, मघा एवं पूर्वा फाल्गुनी हो तो धन; उत्तरा फाल्गुनी, हस्त एवं चित्रा हो तो शोक; स्वाती, विशाखा एवं अनुराधा हो तो शत्रु से भय; ज्येष्ठा, मूल एवं पूर्वाषाढ हो तो राज-भय; उत्तराषाढ, श्रवण एवं धनिष्ठा हो तो मृत्यु, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद हो तो सुख; रेवती, अश्विनी एवं भरणी हो तो गृहस्वामी को प्रवास होता है। इस प्रकार इष्टर्क्ष के ९ भेद कहे गये हैं।

त्रिकोणभं चापि षडष्टकं वा भैक्यं न शस्तं गृहनाथयोश्च ।
क्षारर्क्षको पृष्ठदिगर्क्षके च स्थितिर्न चौरे रुजपीडितः स्यात् ॥७७॥

गृह की राशि एवं गृहस्वामी की राशि में ९-५ या ६-८ का सम्बन्ध हो अथवा गृह एवं गृहस्वामी का नक्षत्र एक ही हो तो अशुभ होता है। गृह का इष्ट नक्षत्र गृह-द्वार की ओर हो तो गृहस्वामी की स्थिति गृह में नहीं होती है। यदि गृह का नक्षत्र पीछे हो तो चोरों से भय एवं रोग-बाधा होती है।

दत्ते दुःखं तृतीयर्क्षं पञ्चर्क्षं पापबुद्धिकृत् ।
आयुर्क्षयं सप्तकर्क्षं कतृभाद्यदि सद्मभम् ॥७८॥

गृह-स्वामी के नक्षत्र से गृह का नक्षत्र तीसरा हो तो दुःख, पाँचवाँ हो तो पाप-बुद्धि एवं सातवाँ हो तो आयु की हानि होती है।

अथ आयाष्टकम्

(अष्ट आय)

अथ ध्वजादिगृहपरत्वेन द्वारविधाने गृहवृद्धेरभ्यन्तरं गृहद्वारविचारः—

ध्वजो धूमोऽथ सिंहः श्वा सौरभेयः खरो गजः ।
ध्वाङ्क्षश्चैव क्रमेणैतदायाष्टकमुदीरितम् ॥७९॥

(**नारदसंहिता** ३१।२९)

अष्ट आय इस प्रकार क्रमशः कहे गये हैं—ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज एवं काक।

अथ ध्वजादिगृहविशेषेण वर्णपरत्वेन गृहद्वारम्

(आय एवं वर्ण के अनुसार गृह-द्वार)

ध्वजे प्रतीचीमुखमग्रजानामुदङ्मुखं भूमिभृतां च सिंहे।
विशो वृषे प्राग्वदनं गजे तु शूद्रस्य याम्याननमामनन्ति ॥८०॥

ध्वज आय होने पर ब्राह्मण का गृह पश्चिम-मुख, सिंह आय होने पर क्षत्रिय का गृह उत्तर-मुख, वृष आय होने पर वैश्य का गृह पूर्व-मुख एवं गज आय होने पर शूद्र का गृह दक्षिण-मुख होना चाहिए।

विशेष—सामान्य नियम के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के गृह का मुख पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर कहा जाता है।

अथ पिण्डानयनप्रकारः

(क्षेत्रफल की प्राप्ति)

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्यो रूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः।
युक्ता घनैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः ॥८१॥

(**मुहूर्तचिन्तामणि**, वास्तु. ३; **वास्तुप्रबोध** पृ.२० श्लोक ६८)

इष्ट नक्षत्र की संख्या में से १ घटा कर शेष से १५२ का गुणा करना चाहिए। इष्ट आय संख्या से १ घटा कर ८१ का गुणा करना चाहिए। दोनों गुणनफल को जोड़ देना चाहिए। इस योग में १७ और जोड़कर २१६ से भाग दिया जाय तो शेष से पिण्ड (क्षेत्रफल) का ज्ञान होता है।

अथायामविस्तारानयनप्रकारः

(चौड़ाई एवं लम्बाई का ज्ञान)

स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथ दैर्घ्यहृत् स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दीर्घता ॥८२॥

(उपर्युक्त विधि से) इष्ट आय एवं इष्ट नक्षत्र से पिण्ड उत्पन्न होता है। पिण्ड में लम्बाई से भाग देने पर शेष संख्या से चौड़ाई का ज्ञान होता है तथा चौड़ाई से भाग देने पर शेष से लम्बाई ज्ञात होती है।

विशेष—**मुहूर्तचिन्तामणि** (वास्तुप्रकरण ४२) में पूरा श्लोक इस प्रकार है—

स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथ दैर्घ्यहृत् स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दीर्घता।
आया ध्वजो धूमहरिश्वगोखरेभध्वाङ्क्षकाः पिण्ड इहाष्ट शोधिता ॥

अथ गृहोच्चविचारः

(गृह की ऊँचाई)

विस्तारतुल्यप्रमितं गृहस्य
चोच्छ्राय ताभ्यान्तरभूयदेशात्।

गृहोपरिस्थस्य गृहस्य तद्वद्
विस्तारहस्तोच्छ्रयता विधेया ॥८३॥

गृह के भीतर जितना विस्तार हो उतनी ही गृह की ऊँचाई रखनी चाहिए। गृह के ऊपर गृह की (मंजिलों की) ऊँचाई भी गृह के विस्तार के बराबर होनी चाहिए।

विशेष—इस प्रसंग में **बृहत्संहिता** ५२/२२ का मत भी अवलोकनीय है। उसके अनुसार विस्तार के १६वें भाग में चार हाथ और जोड़ देने से जो संख्या प्राप्त हो, उतनी ऊँचाई गृह (भूतल) की होनी चाहिए। इसके ऊपर गृह बनाने पर उसकी ऊँचाई निचले तल से १२ भाग कम होनी चाहिए।

विस्तारषोडशशांशः सचतुर्हस्तो भवेत् गृहोच्छ्रायः।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम्॥

अथ गृहप्लवविचारः
(भूमि का ढलान)

उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव।
विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णं यथेष्टमन्येषाम्॥८४॥

ब्राह्मण आदि चारो वर्णों के लिए उत्तर आदि चारों दिशाओं में ढलान प्रदक्षिण क्रम से अभीष्ट होता है। अर्थात् ब्राह्मण के गृह का ढलान उत्तर दिशा में, क्षत्रिय का पूर्व दिशा में, वैश्य का दक्षिण एवं शूद्र का पश्चिम दिशा में होना चाहिए।

(ब्राह्मण सभी प्रकार की भूमियों पर अपना आवास बना सकते हैं, किन्तु अन्य वर्ण वालों को अपने अनुकूल भूमि पर ही आवास बनाना चाहिए।)

विशेष—पूरा श्लोक **बृहत्संहिता** में प्राप्त होता है। मूल ग्रन्थ में दूसरी पंक्ति नहीं है।

अथ ध्रुवादिषोडशगृहविचारः
(ध्रुव आदि षोडश गृह)

दिक्षु पूर्वादितः शाला ध्रुवा भूद्वौ कृताः गजाः।
शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्म ध्रुवादिकम्॥८५॥

(मुहूर्तचिन्तामणि, वास्तुप्रकरण, ८)

पूर्व से प्रारम्भ कर चारो दिशाओं में मुख के अनुसार शाला का ध्रुवाङ्क १, २, ४, ८ (पूर्व-१, दक्षिण-२, पश्चिम-४ एवं उत्तर-८) होता है। शाला ध्रुवाङ्क के संयोग से ध्रुव आदि गृह बनते हैं। अर्थात् जिन-जिन दिशाओं में शाला हो उनके ध्रुवाङ्कों में १ जोड़ने से ध्रुव आदि षोडश गृह बनते हैं।

ये १६ गृह इस प्रकार हैं—

ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम्।
सुमुखं दुर्मुखं ग्रक्ष्च रिपुदं वित्तदन्तथा।
नाशमाक्रन्दं विपुलं विजयाख्यं तु स्याद्गृहम्॥८६॥

ध्रुव, धान्य, जय, नन्द, खर, कान्त, मनोरम, सुमुख, दुर्मुख, ग्रञ्च (क्रूर), रिपुद वित्तद, नाश, आक्रन्द, विपुल एवं विजय गृह होते हैं।

विशेष—वास्तुसौख्य (२३८) में १६ गृहों के नाम ध्रुव, धान्य, जय, नन्द, खर, कान्त, मनोरम, सुवक्त्र, दुर्मुख, क्रूर, विपक्ष, धनद, क्षय, आक्रन्द, विपुल एवं विजय हैं—

ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम्।
सुवक्त्रं दुर्मुखं क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयम्।
आक्रन्दं विपुलं शश्वत् षोडशं विजयाभिधम्॥

अथ ध्रुवादिगृहाणां नाम नामाक्षराणि

(ध्रुव आदि गृह के नामाक्षर)

तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे नामाक्षरं त्रयम्।
भूद्व्यब्धीष्वङ्गदिग्वह्निविश्वेषु द्वौ नगेऽब्धयः॥८७॥

(मुहूर्तचिन्तामणि, वास्तु. ९)

शाला के ध्रुवाङ्कों का योग १५, १२, ८, १६, ९, ११, १४ हो तो गृह का नाम तीन अक्षर का होता है। यदि १, २, ४, ५, ६, १०, ३, १३ हो तो गृह का नाम ३ अक्षर एवं ७ हो तो चार अक्षर का होता है।

अथ गृहेशविचारः (गृहस्य व्ययांशयोः विचारः)

(गृहेश का विचार)

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक् सपिण्डः।
तष्टो गुणैरिन्द्रकृतान्तभूपाः ह्यंशा भवेयुर्न शुभोऽन्तकोऽत्र॥८८॥

(मुहूर्तचिन्तामणि, वास्तु. ७)

पिण्ड के नक्षत्र में ८ से भाग देने पर शेष व्यय होता है। व्यय में गृह के ध्रुवादि नामों के अक्षर की संख्या एवं क्षेत्रफल (पिण्ड) जोड़ कर ३ से भाग देने पर यदि १ शेष बचे तो इन्द्र का, २ शेष बचे तो यम का एवं ० शेष बचे तो राजा का अंश होता है। इसमें यम का अंश गृह के लिए शुभ नहीं होता है।

अथ नृपाणां षोडशगृहरचनोपायः

(राजाओं के १६ गृह)

स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजश्च धान्य-
भाण्डारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः।
तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्या-
भ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम ॥८९॥

(मुहूर्तचिन्तामणि, वास्तु. २१)

राजाओं के आवास निर्माण के प्रसंग में १६ कक्षों की स्थिति वर्णित है। पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से कक्ष इस प्रकार होंगे—स्नान गृह, पाकशाला, शयन गृह, शस्त्रागार, भोजन गृह, धान्य गृह, भाण्डार गृह एवं पूजा गृह। इन कक्षों के मध्य में मथन गृह, घृत-गृह, शौचालय, विद्याभ्यास कक्ष, रोदन गृह, रति गृह, औषधालय तथा सर्ववस्तु-संग्रहकक्ष।

उपर्युक्त सभी कक्षों की स्थिति इस प्रकार समझी जा सकती है—

ईशान कोण से पूर्व तक—देवगृह, सर्ववस्तुसंग्रहकक्ष, स्नान गृह, मथन गृह।

आग्नेय कोण से दक्षिण तक—रसोई, घृत कक्ष, शयन कक्ष, शौचालय।

नैर्ऋत्य कोण से पश्चिम तक—शस्त्रागार, विद्याभ्यास गृह, भोजन गृह, रोदन गृह।

वायव्य कोण से उत्तर तक—धान्य गृह, रतिगृह, भाण्डार, औषधालय।

ईशान			पूर्व			आग्नेय
	देवालय	संग्रह कक्ष	स्नान गृह	मथन	रसोई	
	औषधालय				आज्य	
उत्तर	भाण्डार		आँगन		शयन	दक्षिण
	रतिगृह				पुरीषगृह	
	धान्यगृह	रोदनगृह	भोजनकक्ष	विद्याभ्यास गृह	शस्त्रागार	
वायव्य			पश्चिम			नैर्ऋत्य

अथ देहलीस्थापनम् (द्वारचक्रम्)

(द्वार-चक्र)

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभैः
नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत्।
देहल्यां गुणभैः मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम्॥९०॥

(**मुहूर्तचिन्तामणि**, वास्तु. २९)

सूर्य के नक्षत्र से ४ नक्षत्र सिर पर होते हैं। इनमें द्वार बनाने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् ८ नक्षत्र कोण में होते हैं। इनमें द्वार बनाने से गृह से उद्वास

होता है। इसके पश्चात् ८ नक्षत्र द्वार की शाखा के स्थान पर होते हैं। इन नक्षत्रों में द्वार बनाने से सुख की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् ३ नक्षत्र गृह की देहली में होते हैं। इनमें द्वार बनाने से गृहस्वामी की मृत्यु होती है। पश्चात् के ४ नक्षत्र द्वार के मध्य में होते हैं। इनमें निर्मित द्वार सुख प्रदान करता है। बुद्धिमान् व्यक्ति को इस चक्र का अवलोकन कर शुभ द्वार का निर्माण कराना चाहिए।

अथ गृहसमीपफलम्

(गृह के निकटस्थ के फल)

सचिवालयेऽर्थनाशः धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे।
उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाकीर्तिः ॥९१॥

(**बृहत्संहिता** ५२/८७)

मन्त्री के आवास के निकट गृह बनवाने से अर्थ-हानि, धूर्त व्यक्ति के निकट गृह बनवाने से पुत्र का वध, देवालय के समीप गृह से उद्विग्नता एवं चौराहे के निकट गृह बनवाने से अपयश होता है।

चैत्ये भयं ग्रहकृतं वल्मीकश्वभ्रसङ्कुले विपदः।
गर्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥९२॥

(**बृहत्संहिता** ५२/८८)

स्थान के प्रधान वृक्ष के निकट गृह बनवाने से भूतप्रेतों आदि की बाधा, दीमक की बाँबी अथवा बिल होने पर विपत्तियाँ, गड्ढा होने पर प्यास से पीड़ा एवं कूर्म की आकृति की भूमि होने पर धन का नाश होता है।

विशेष—'चैत्य' शब्द पर **वास्तुसौख्य,** २४ में इस प्रकार टिप्पणी प्राप्त होती है—

चैत्यो ग्रामप्रधानवृक्षः। चैत्येषु भयं भवति वास्तुनीतिर्बृहस्पतिनाभिहितत्वात्।

बृहस्पति के मत का उल्लेख **बृहत्संहिता** में इस प्रकार किया गया है—

चैत्यवृक्षेषु भूतेभ्यः कृच्छ्रावासः पुरा ह्ययम्।
अरतिस्त्वभिवर्धेत निविष्टैः कण्टकिद्रुमैः॥

अथ गृहप्रवेशविचारः

(गृह-प्रवेश का विचार)

सौम्यायने ज्येष्ठतपोन्त्यमाधवे
यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे।
स्याद् वेशनं द्वाःस्थमृदुध्रुवोडुभि-
र्जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिरे ॥९३॥

(**मुहूर्तचिन्तामणि**, गृहप्रवेश. १)

उत्तरायण सूर्य के रहने पर ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन एवं वैशाख मास में, द्वार की दिशा में स्थित नक्षत्र, मृदु एवं ध्रुव नक्षत्रों में, जन्म राशि या लग्न से उपचय (३, ६, १०, ११) राशि स्थिर लग्न में, राजा को यात्रा से लौटने पर एवं नवीन गृह में प्रवेश करना चाहिए।

अथ गृहप्रवेशलग्नफलम्
(गृह-प्रवेश का लग्न-फल)

नैरुज्यदारिद्र्यविभूतिकारी
बन्ध्वात्मजद्वेषि कलत्रघाती।
प्राणापहारी कलहप्रदश्च
सिध्यर्थदौ भीतिकरः क्रमेण ॥९४॥

जन्मलग्न की पहली राशि में गृहप्रवेश करने पर आरोग्य, दूसरी में दरिद्रता, तीसरी में सम्पदा, चौथी में बन्धुघात, पाँचवीं में पुत्र-नाश, छठीं में पुत्र-नाश, सातवीं में पत्नी-नाश, आठवीं में गृहस्वामी के प्राणों की हानि, नवीं में कलह, दसवीं में सिद्धि, ग्यारहवीं में अर्थलाभ एवं बारहवीं में भय प्रदान करने वाला कहा गया है।

राशिर्लग्नतो जन्मराशेर्जन्मोदयात्तथा।
कीर्तितो मुनिभिर्वेश्मप्रवेशे शौनकादिभिः ॥९५॥

गृहकर्ता के जन्मलग्न एवं जन्मराशि गृहप्रवेश काल में प्रवेश लग्नगत हो तो गृह-प्रवेश शुभ होता है, ऐसा शौनक आदि मुनियों का मत है।

अथ गृहप्रवेशे वामरविविशेषतिथिविचारः
(गृह-प्रवेश के समय वाम-रवि-विचार)

वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के पञ्चमे प्राग्वदनादिमन्दिरे।
पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने ॥९६॥
(**मुहूर्तचिन्तामणि**, गृहप्रवेश ५)

(१,८,५,२,११ वें भाव में सूर्य के रहने पर पूर्व आदि दिशा के गृह में प्रवेश करने के लिए सूर्य वाम होते हैं।) रवि के वाम होने पर पूर्वादि मुख वाले गृहों में प्रवेश का फल मृत्यु, सुत, अर्थ एवं लाभ होता है। पूर्व द्वार वाले गृह में पूर्णा तिथि, दक्षिण में नन्दा तिथि, पश्चिम में भद्रा एवं उत्तर में जया तिथि में प्रवेश करना चाहिए।

अथ गृहप्रवेशे निषेधाः
(गृह-प्रवेश में निषेध)

द्वीशेऽनले दारुणभे तथोग्रे भे स्त्रीगृहपुत्रात्मविनाशनं स्यात्।
मेषकुलीरे मकरे तुलाधरे न चैत्रे रिक्तारनिशामलिम्लुचे ॥९७॥

विशाखा नक्षत्र में गृह-प्रवेश करने पर स्त्री-नाश; कृत्तिका नक्षत्र में प्रवेश करने पर

गृह का नाश; आर्द्रा, श्लेषा, ज्येष्ठा अथवा मूल नक्षत्र में प्रवेश करने पर पुत्र का विनाश; भरणी, तीनों पूर्वा अथवा मघा में प्रवेश करने पर गृहस्वामी का नाश होता है।

मेष, कर्क, मकर एवं तुलालग्न में, चैत्र मास में, रिक्ता तिथि (४।९।१४), मङ्गलवार, रात्रि एवं अधिक मास में गृहप्रवेश प्रशस्त नहीं होता है।

अथ कलशचक्रम्

(कलश-चक्र)

वक्त्रे भू रविभात् प्रवेशसमये कुम्भोऽग्निदाहः कृताः
प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे।
श्रीर्वेदा कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत् सर्वदा॥९८॥

(**मुहूर्तचिन्तामणि**, गृहप्रवेश., ६)

गृहप्रवेश के समय सूर्य-संक्रान्ति जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र को कलश के मुख पर रखना चाहिए। उस नक्षत्र में गृहप्रवेश करने पर अग्निदाह होता है। इसके पश्चात् उस नक्षत्र से आगे के चार नक्षत्र कलश के पूर्व भाग में रखे जाते हैं। उन नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने पर गृहस्वामी का अपने गृह से उद्वास होता है। इसके आगे के ४ नक्षत्र कलश के दक्षिण भाग में रखे जाते हैं। उनमें गृहप्रवेश करने पर गृहस्वामी को लाभ होता है। आगे के ४ नक्षत्र पश्चिम भाग में होते हैं। इनमें गृहप्रवेश से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। आगे के ४ नक्षत्र उत्तर भाग में रखे जाते हैं जिनमें गृहप्रवेश से कलह होता है। अगले ४ नक्षत्र कलश के गर्भ में, पुन: ३ नक्षत्र गुद में एवं ३ नक्षत्र कण्ठ में स्थापित करना चाहिए। गर्भस्थ नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने पर विनाश; गुदस्थ नक्षत्रों में स्थिरता एवं कण्ठस्थ नक्षत्रों में भी स्थिरता की प्राप्ति होती है।

अथाग्निचक्रम्

सूर्यर्क्षतस्त्रिभगे च चन्द्रे सूर्यार्कज्ञशुक्रार्किशशाङ्कनामा।
तदग्रतौ गुर्वगुकेतवस्वनेष्टाहुती क्रूरखगाकितास्ये॥९९॥

सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रपर्यन्त नक्षत्रों में ३ नक्षत्र सूर्य के, ३ बुध के, ३ शुक्र के, ३ शनि के एवं ३ चन्द्रमा के होते हैं। पुन: ३ नक्षत्र मङ्गल, ३ बृहस्पति, ३ राहु एवं ३ केतु के होते हैं।

इनमें गृहप्रवेश नहीं करना चाहिए।

○

परिशिष्टम्

अथाग्निवासविचारः

जिन स्थितियों में अग्नि-वास होता है, उनका उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है। हवन के लिए यह विचारणीय है—

शुक्लादितः प्राप्ततिथिः कुयुक्ता वारान्विता स्वाब्धितयावशेषे।
मर्त्योग्निवासो विपदाग्नितुल्ये सौख्याय होमे मुनिना प्रयुक्ता ॥१००॥
दिव्यकेतः प्राणविनाशाय पातलगोद्विप्रमितेऽर्थनाशः।
कृष्णे च कृष्णा प्रतिपन्मुखाश्च वह्नेः निवासेन च युक्तिरेषा ॥१०१॥

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्राप्त तिथि की संख्या में १ जोड़ कर उसमें रविवार से वर्तमान वार की संख्या जोड़ दें एवं इसमें ४ का भाग दें। ३ (एवं ०) शेष होने पर भूमि पर अग्नि-वास होता है। उस दिन हवन करने से सुख होता है। १ शेष होने पर आकाश एवं २ शेष होने पर पाताल में अग्नि का वास होता है। इसमें अग्नि-होम करने से प्राण एवं धन की हानि होती है। कृष्ण पक्ष में अमावास्या से तिथि गिननी चाहिये। वह्नि-वास जानने की शेष विधि यही है।

○

श्लोकानुक्रमणिका

○

गृहवास्तुप्रदीप

किन्हीं स्वनामधन्य सम्प्रति अज्ञात लेखक द्वारा अत्यन्त लघु कलेवर में निबद्ध एवं सुदीर्घ काल से विद्वज्जनों की दृष्टि से ओझल होते हुए भी वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित पुस्तकों में अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाला प्रकृत 'गृहवास्तुप्रदीप' ग्रन्थ विद्वानों के साथ-साथ वास्तुशास्त्र के विषय की जिज्ञासा रखने वाले सामान्य जन के भी सर्वतोभावेन पूर्णत: उपादेय ग्रन्थ है। गृहनिर्माण हेतु भूमिप्राप्ति से लेकर निर्माण-पर्यन्त आवश्यक समस्त जानकारियाँ इस लघुकाय ग्रन्थ में अन्तर्निहित हैं। इस ग्रन्थ की सर्वातिशायिता इसी से स्पष्ट है कि इसके अध्ययनोपरान्त गृहनिर्माण-सम्बन्धी कोई भी जिज्ञासा अवशिष्ट नहीं रह जाती।

ग्रन्थ की इन्हीं उपर्युक्त विशेषताओं को दृष्टिगत कर वास्तुशास्त्रमर्मज्ञा डॉ. (श्रीमती) शैलजा पाण्डेय ने इसके अतिप्राचीन संस्करण को पूर्णत: शुद्ध एवं परिमार्जित कर अपनी विस्तृत एवं सर्वजनउपादेय हिन्दी व्याख्या से विभूषित किया है, जिससे प्रकृत संस्करण और भी उपयोगी हो गया है।

डॉ. (श्रीमती) शैलजा पाण्डेय
एम.ए., पी.एचडी., काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
आचार्य (पुराणेतिहास), सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि. वि., वाराणसी
डी. लिट् (वास्तुशास्त्र), सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि. वि., वाराणसी
कार्यरत्-श्री गङ्गानाथ झा केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद

सम्पादन एवं हिन्दी व्याख्या :

१. वास्तुसौख्यम् (उ.प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
२. राजवल्लभमण्डनम् (उ.प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
३. मनुष्यालय चन्द्रिका
४. गृहवास्तुप्रदीप

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी